GOVERNMENT OF INDIA.
IMPERIAL LIBRARY, CALCUTTA.

Class No. 181. 56. 90.

Book No. 7.

I. L. 38.

REGISTERED No 242

[illegible] पं० भीमसेन शर्मा सम्पादक ब्रा०स० इटावा के पते से भेजिये

ब्राह्मणसर्वस्व

THE BARHMAN SARVSAWA

आदर्शकसरयस्य दार्थकार्यो विरहा आर्य्यास्तथैश्शस्य,
स्तेषां मोह महान्धकार जनिता अविद्या क्रमादुस्तृता ।
तन्नाशायसनातनस्य सुहृदो धर्मस्य संसिद्धये,
आविस्त्वास्तमिदं सुपत्रममलं निस्सायतमासिकम् ॥
धर्मो धनं ब्राह्मणसत्तमानां, तद्वर्धनेपायपदप्रवाच्यम् ।
धनस्य तस्यैव विभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिः शुभदा सदा स्यात् ॥

भाग ४ } मासिकपत्र मासाङ्क { १

[illegible]

[illegible]

पं० भीमसेन शर्मा द्वारा सम्पादित होकर

ब्रह्मप्रेस यन्त्रालय–इटावा में

मुद्रित होकर प्रकाशित होता है ॥

संवत् १९६२ वि० ४२ मई सन् १९०[illegible] ई०

विषय–१–प्रस्ताव भाग ४ का । २–धर्मकार्य देखभाल । ३–सनातन-धर्मशिक्षापद्धति । ४–शङ्कासमाधान ५–प्रेरितलेख । ६–धर्मसम्बन्धी समाचार ७–विविधसमाचार । ८–सूचना । ९–विज्ञापन ।

[illegible] पुस्तक का अगाऊ वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित २) है

विज्ञापन छपाने बंटाने के नियम ॥

१-जो विज्ञापन ब्रा० स० में छपें वा बांटे जावें उन के सत्यमिथ्या के उत्तरदाता विज्ञापन वाले ही समझे जांयगे । इस कारण ग्राहक लोग सोच समझ के व्यवहार करें ।

२-ब्रा० स० में एक वार कोई विज्ञापन एक पेज से कम छपावें तो =)॥ लैन के हिसाब से लिया जायगा । तीन मास तक =)। ६ मास तक =) एक वर्ष तक -)॥ प्रति पङ्क्ति प्रतिमास लगेगा ।

३-एक वार एक पेज पूरा छपाने पर ३) लगेगा । १ एक पेज तीन मास तक ७ छः मास तक १२) और १ वर्ष तक २०) लगेगा ।

४-जिस किसी को विज्ञापन बंटाना हो वह ब्रा० स० के दफ्तर से पूछ कर ब्रा० स० का कोड़ पत्र और तारीख़ जाननी चाहिये । ४ मासे तक का विज्ञापन ४) में ८ मासे तक का ५) में और १ एक तोला तक का ६) में बांटा जायगा । रु० छपाई और विज्ञापन बटाई का पहिले लिया जायगा ।

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ॥

१-यह मासिकपत्र साढ़े छः फ़ारम ५२ पेज रायल साइज़ का प्रतिमास की अन्तिम तारीख़ को निकलता है ॥

२-इस का वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित बाहर के ग्राहकों से २।) सवा दो रुपया अगाऊ और इटावे के ग्राहकों से २) लिया जाता है ॥

३)-अगला अं० पहुंचे जाने पर पिछला न पहुंचने की सूचना जो ग्राहक लिखेंगे उन को वह अं० विना मूल्य फिर भेजा जायगा । देर होने पर हुवा अं० =) प्रति के हिसाब से मिलेंगे ।

४-राजा रईस लोगों से उन के गौरवार्थ ५) वार्षिक मूल्य लिया जायगा ।

५-पुस्तकों की समालोचना भी इस में यथोचित हुआ करेगी ॥

६-जो पहिला अंक नमूना का मंगाकर ग्राहक होना चाहें वे तत्काल २ भेजें और ग्राहक होने की सूचना दें । ग्राहक न हों तो ≡) के टिकट नमूने का मूल्य भेज देवें अन्यथा द्वितीय अंक वी०पी० उन की सेवा में पहुंचेगा ।

७-मूल्य भेजते समय ग्राहक लोग अपना नम्बर अवश्य लिखा करें । चिट्ठी पत्री नागरी वा अंग्रेजी में भेजा करें उर्दू के हम उत्तर दाता नहीं हैं ।

८-कहीं बदली आदि के कारण स्थानान्तर में जावें तो अपना पता अवश्य बदलवावें । अन्यथा अंक न पहुंचने के उत्तर दाता हम न होंगे ॥

९-जो ग्राहक लोग अन्य ग्राहक करावेंगे उन को यथोचित कमीशन मिलेगा और १० ग्राहक कराने वाले को १ मासिक पत्र विना दाम मिला करेगा ।

के स्त्री-पुत्रादि और गौ घोड़ादि को आप सुखी करो। पाठक महाशय ! इस प्रकार हम को मन्दिरादि में जाकर वा घर आदि में भी नित्यप्रति परमात्मा की स्तुति प्रार्थनादि करनी चाहिये। हे शिव जी ! हमारे इस ब्राह्मणसर्वस्व पत्र द्वारा सनातन वैदिक धर्म का प्रकाश तथा वेदविरुद्ध कल्पित मतों का नाश हो ऐसी कृपा करो।

यद्यपि अब तक तीन वर्षों में ब्राह्मणसर्वस्व पत्र ठीक २ समय पर प्रतिमास प्रकाशित नहीं हो पाया तथापि ब्रा० स० के टाइटिल में छपने वाले श्लोकों में जो २ इस पत्र के निकालने का प्रयोजन दिखाया गया है उस में से अधिकांश सुफल हुआ है। हमारे पाठकों को स्मरण होगा कि हमने प्रथम ही वर्ष के ब्रा० स० के किसी अं० में लिखा था कि वेदप्रकाशादि निरर्थक नाम वाले छकोड़े पत्रों के तुल्य ब्रा० स० का केवल यह उद्देश नहीं है कि—कुंजड़ियों की सी लड़ाई लड़ा करे किन्तु इस का उद्देश मुख्य कर यह सनातन वैदिक धर्म की गम्भीरताओं को प्रकाशित करे बहुत काल से वेद के तत्त्वज्ञानी लोग नहीं रहे इस कारण वेद की गम्भीरता लुप्त सी हो गई है। वेद का नाम बड़ा प्रतिष्ठित है जिस का झूठा नाम ले २ कर नये मत वेदविरुद्ध चल गये। हमारा विचार है कि हम ब्रा० स० द्वारा यथाशक्ति वेद की महिमा दिखावें साथही स्मृति इतिहास पुराणादि पर होते आक्षेपों का भी निराकरण होता चले। वेद और इतिहास पुराणों का परस्पर मेल तथा अविरोध भी सिद्ध हो। इत्यादि विचारों को प्रकाशित करने से वेदविरुद्ध सिद्धान्त स्वयमेव अस्त होजायंगे कि जैसे सूर्योदय होतेही सब अन्धकार स्वयं मिट जाता है। यदि कोई कहे कि फिर तुम आ० समाज का खण्डन क्यों करने लग गये तब इसका उत्तर यह दिया था कि प्रथम रास्ता साफ करने के लिये जैसे झाड़ देने की आवश्यकता होती है वैसे यहां भी कांटे रूप नये मत वैदिक धर्म के मार्ग में हो गयेहैं। उनकी असत्यता पूर्ण रूप से दिखा देना ही मार्ग की शुद्धि है सो अधिकांश तीन वर्ष में किया भी गया है और जो कुछ शेष है आगे किया जायगा। वर्ण व्यवस्था नियोग श्राद्ध अवतार मूर्त्तिपूजा आदि अनेक विषयों में प्रतिपक्षियों को बड़े २ प्रबल युक्ति प्रमाण सहित उत्तर दिये गये। समाजी मत को वेदविरुद्ध सिद्ध किया गया।

अब आगे विचार यह है कि श्राद्ध, तत्वज्ञान आदि कई विषय जो पहिले तीन भागों में अधूरे छप कर रह गये हैं। उन के शेष लेखों को इस चौथे भाग में पूरा किया जावे। द्वितीय यह कि प्रेरित लेख कम छापे जावें। क्योंकि प्रेरित लेख सब अच्छे ही नहीं होते। परन्तु प्रेरक लोग बहुत लेख भेजते हैं जो अब तक प्रेरकों का लिहाज किया गया आगे न होगा। इस लिये लेख कम भेजाकरें। सारगर्भित थोड़ा लेख शास्त्रानुकूल ग्राहकों का उपकारी होगा वही छापा जायगा। तीसरी बात यह होगी कि वेदद्वारा कुछ स्तुति प्रार्थना प्रत्येक अंक में नयी२ छपा करेगी। चौथा विचार यह होगा कि वेद की महिमा और वेद पुराणों की एकता विषय में कुछ लेख चलाया जायगा। अब पाठक महाशयों से अन्त में प्रार्थना है कि वे लोग वेद प्रकाशादि समाजी पत्रों की शास्त्रीय किसी बात का उत्तर हमारी ओर से न दिया जाय तो उसकी सूचना सम्पादक ब्रा०स० को देते रहें किन्तु उनकी मनमानी बातों का उत्तर देने में समय गमाना व्यर्थ है।

अन्तिम प्रार्थना

ओंआप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यांमा मा ब्रह्मनिराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणंमेऽस्तु। तदात्मनि निरते यउपनिषत्सु धर्मास्तेमयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥ १ ॥

अर्थ-वाणी नासिका चक्षु श्रोत्र बाहु इत्यादि सब इन्द्रिय और अंगों की शक्ति मेरी बढ़े। वेद का तत्वज्ञान मुझ को प्राप्त हो। मैं वेद का निराकरण खण्डन कभी न करूं और वेद मुझ को न छोड़ें मेरा निराकरण छूटना धर्म से वा वेद से कभी न हो। उस शुद्ध चैतन्य ज्ञान स्वरूप आत्मा में निरन्तर रमते हुए मुझ में ब्रह्मविद्या के जो धर्म हैं वे अवश्य स्थिर हों।

ओंखं ब्रह्म-ओंशान्तिः ३ ॥

कर्मकाण्ड देवपूजा आ०स० अं० १२ पृष्ठ ५३६ से आगे

नागेन्द्रहारायत्रिलोचनाय भस्माङ्गरागायमहेश्वराय ।
नित्यायशुद्धायदिगम्बराय तस्मैनकारायनमःशिवाय ॥

भा०—बड़े २ सांपों का हार जिन के कण्ठ में पड़ा है जिन के तीन नेत्र हैं जिनके सब शरीर में श्वेत भस्म लगी है ऐसे नंगे नित्य शुद्ध नकार रूप महादेवजी के लिये हमारा नमस्कार प्रणाम प्राप्त हो । यदि मूर्त्तिपूजा करने कराने वालों का यह सिद्धान्त होता कि हम पत्थरादि की मूर्त्ति को ही पूजा करते कराते हैं तो वे मूर्त्ति के सामने बैठकर इस प्रकार स्तुति प्रार्थना करते कि-हे पत्थर तुम पहिले किसी पहाड़ में थे वहां से इस २ प्रकार तोड़कर लाये गये फिर कारीगर ने तुम को छील २ कर इस प्रकार ऐसी चिकनी मूर्त्ति बनाया । तुम अब अच्छे चिकने और खूब कड़े हो । एक ही जगह धरे रहते हो. तुम को हर्ष शोक कुछ नहीं व्यापता हम को भी हर्ष शोक के दुःख से बचाओ । जब ऐसी स्तुति प्रार्थना कोई नहीं करता तो ज्ञात होता है कि पाषाणादि मूर्त्ति की पूजा कोई करता ही नहीं किन्तु मूर्त्ति में वा मूर्त्ति पर चेतन ईश्वर देवता की पूजा सभी करते हैं । इस से अन्य की पूजा से अन्य के प्रसन्न होने की शंका यहां उपस्थित ही नहीं होती । यद्यपि इस प्रश्न का अन्य कई प्रकार से उत्तर दिया जा सकता है । तथापि आवश्यकता विशेष न दीखने से यहां अधिक बढ़ाना हम अच्छा नहीं समझते ।

(प्र ०४) (न तस्य प्रतिमा अस्ति) इस वेदप्रमाण के अनुसार मूर्त्तिपूजा वेद विरुद्ध है फिर वेदविरुद्ध काम क्यों करें ? ।

(उ०४) इस वेदप्रमाण का यह अर्थ है कि उस ईश्वर की प्रतिमा प्रतिकृति उपमा वा तुल्यता नहीं है कि वह ईश्वर ठीक २ ऐसी ही शकल सूरत का है । यहां तो उस की प्रतिमा का निषेध है और (सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि०) इत्यादि कई मन्त्रों में तथा (अथैतां प्रजापतिरात्मनः प्रतिमामसृजद्यद्यज्ञम्) इत्यादि श्रुतियों में ईश्वर की प्रतिमा होने का प्रतिपादन है । इन दोनों प्रकार के लेख की संगति इस प्रकार लगाई जायगी कि ईश्वर वेद से साकार निराकार दोनों प्रकार का सिद्ध हो चुका है । सो (न तस्य प्रतिमा अस्ति) यह निराकार प्रतिपादक है कि जिस का महान् यश कीर्त्ति है जो त्रिपाद् अमृत ब्रह्म है वह कभी साकार नहीं होता इसी कारण उस की प्रतिमा नहीं है । क्यों कि नि-

राकार की प्रतिमा प्रतिकृति तस्वीर फोटो हो ही नहीं सकता युक्ति से भी विरुद्ध है। और त्रिपाद् निराकार ब्रह्म की प्रतिमा वेद में निषेध किये अनुसार न कोई मानता न बनाता है। क्यों कि सब कोई जानता है कि निराकार का ध्यान में आजाना भी कठिन है तब उस की प्रतिमा कैसे कल्पित की जावे?। और जिन २ वेद मन्त्रों वा श्रुतियों में ईश्वर की प्रतिमा होनी कही है वह उस साकार एक पादरूप को लेकर कहा है। क्योंकि साकार की प्रतिमा बन सकती है और साकार अवतारों की ही प्रतिमा प्रायः सभी मानते बनाते हैं। निराकार को तो श्रुति में अनिरुक्त कहा है कि वह वाणी [मन्त्रोच्चारण] से भी स्तुति नहीं किया जासकता। इसी लिये होम यज्ञों में निराकार प्रजापति के लिये आहुति देते समय मन्त्रोच्चारण नहीं किया जाता (प्रजापतये स्वाहा) इस को मन में ध्यान मात्र कर किया करते हैं। और मन्त्रोच्चारण द्वारा जहां २ होमादि कर्म होता वहां सर्वत्र साकार ईश्वर के लिये है। इस से सिद्ध होगया कि प्रतिमा वेदविरुद्ध नहीं किन्तु ठीक वेदोक्त वेदानुकूल है अज्ञान पक्ष होने से प्रश्न कर्त्ता का प्रश्न ही वेदविरुद्ध है।

(प्रश्न ५) कोई ऐसा प्रमाण दो जिस में स्पष्ट दीख पड़े कि मूर्त्तिपूजा सिद्ध होती है। मूर्त्ति किस की बनानी चाहिये। मट्टी पत्थर लोहा चांदी वगैरहः किसकी कितनी लम्बी चौड़ी होनी चाहिये सप्रमाण उत्तर दो।

(उत्तर ५) ऐसा प्रमाण उसी उस के लिये हो जायगा कि जिस पर उस को पूर्ण विश्वास हो। जिस के हृदय में हठ दुराग्रह ने पूरा २ दखल कर लिया है वहां प्रमाण को ठहरने के लिये जगह नहीं मिलती इस से कैसा ही प्रमाण क्यों न हो जबरदस्ती किसी को विश्वास नहीं करा सकता तथापि हम यहां प्रमाण देते हैं। देखो—

देवीद्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासम् ॥ यजुर्वेद अ० ३७ । २ ॥

अथ मृत्पिण्डं परिगृह्णाति देवीद्यावापृथिवीइति। शतपथ० १४ । १ । २ । ९ । मृदमादत्ते पिण्डवद्देवीद्यावापृथिवीइति ॥ का० कल्पसूत्र अ० २६ । १ । ४ ।

भाषा—यहां मन्त्र ब्राह्मण और कल्प सूत्र तीनों एक साथ मिल कर इस कर्त्त-

ष्य काम को ठीक २ विधि पूर्वक बतलाते हैं। जल से सानी हुई मट्टी को (देवीद्यावा०) मन्त्र पढ़ के हाथ में लेता है इस मट्टी से यज्ञरूप प्रजापति परमेश्वर के शिरकी प्रतिमा बनायी जावेगी। मन्त्रार्थ यह है कि-हे प्रकाश युक्त आकाश पृथिवी तुम को मैं आज यज्ञ का शिरो रूप बना के सिद्ध कर सकूं ऐसी कृपा करो। मट्टी के पिण्ड में आकाश और पृथिवी दोनों साथ ही विद्यमान हैं॥

इसके आगे विस्तरभय से बीच का बहुत सा विचार छोड़ देते हैं। और एक उपयोगी बात लिखते हैं।

इयत्यग्रआसीन्मखस्यतेऽद्य शिरो राध्यासम्। य०३७।५। अथ वराहविहतम्। इयत्यग्र आसीदितीयती ह्वाऽइयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री तामेमूषइति वराह उज्जघान सोऽस्याः पतिः प्रजापतिः॥ शत० १४।१।२।११। इयत्यग्रइति वराहविहतम्॥ का० अ० २६।१।७।

भा०-(इयत्यग्रे०) मन्त्र को पढ़ के सूकर की खोदी मट्टी को भी महावीर प्रतिमा बनाने के लिये लेवे। यह पृथिवी पहिले प्रादेशमात्र लम्बी थी। जिस प्रकार कोई हाथ का प्रादेश दिखाता हुआ कहे कि पहिले इतनी लम्बी पृथिवी थी वैसे ही यहां वेद का कथन है। उस तुझ पृथिवी को मैं यज्ञ का शिरोरूप प्रादेशमात्र महावीर बनाऊंगा। उस पृथिवी पर ही यज्ञ तथा बनाऊं ऐसे विचार से भगवान् प्रजापति ने वराहरूप धारण करके प्रादेशमात्र पृथिवी को उद्धृत किया ऊपर को लाये। वेही वराह रूप धारी भगवान् इस पृथिवी के पति रक्षक हैं। इस मन्त्र और ब्राह्मण से वराहावतार होना भी स्पष्ट ही सिद्ध है। पृथिवी को प्रादेशमात्र कहने से वेद का अभिप्राय यह है कि बहुत छोटी सी पृथिवी पहिले थी। सो नियम ही चल रहा है कि सभी पदार्थ प्रकट वा उत्पन्न होते समय छोटे होते हैं फिर क्रमशः बढ़ते जाते हैं। वैसे ही पृथिवी भी क्रमशः बढ़ी है।

अथ मृत्पिण्डमुपादाय महावीरं करोति मखायत्वा० (य० अ० ३७।७) प्रादेशमात्रं प्रादेशमात्रमिव हि शिरो मध्ये संगृहीतम्। मध्ये संगृहीतमिव हि शिरोऽथास्योपरिष्टात्त्र्यङ्गुलमुखमुन्नयति। नासिकामेवास्मिन्नेतद्दधातितंनिष्ठितमभिमृशतिमखस्यशिरोऽसीति॥शत०१४।१।२।१७॥

भा०:-उस मिट्टी के पिण्ड में वामी की मिट्टी और वराह की खोदी मट्टी को हाथ में लेकर (मखाय त्वा०) मन्त्र पढ़के प्रादेशमात्र लम्बी महावीर नामक यज्ञात्मक प्रजापति परमेश्वर की मूर्ति बनावे । यह मूर्ति बीच में संकुचित पतली हो जैसा गले का भाग पतला होता है । उस मूर्ति में ऊपर तीन अंगुल मुख बनावे और उससे ऊपर नासिका बनावे । फिर बनाके तयार किये महावीर मूर्ति का (मखस्यशिरोऽसि) मन्त्र पढ़के दहिने हाथसे स्पर्श करे । इस से आगे रौहिण कपालों का स्पर्श तूष्णीं बिना मन्त्र करना लिखा है । तदनन्तर-

प्रजापतिर्वा एष यज्ञो भवति । उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमितꣳ रूपं तदस्य तेन संस्करोति । अथ तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमितꣳ रूपं तदस्य तेन संस्करोति । स ह वाऽएतꣳ सर्वं कृत्स्नं प्रजापतिꣳ संस्करोति य एवं विद्वानेतदेवं करोति । शतप० १४ । १ । २ । १८ ॥

भा०-इस कण्डिकाका मतलब यह है कि यज्ञभी एक परमेश्वरका ही रूप है । प्रजापति यह प्रत्यक्ष यज्ञ है । जिस का स्वरूप भीष्मस्तव राजके एक श्लोकमेंकहा है-

चतुर्भिश्चचतुर्भिश्च द्वाभ्यांपञ्चभिरेवच ।
हूयतेचपुनर्द्वाभ्यां तस्मैयज्ञात्मनेनमः ॥ १ ॥

भा० ४-ओ३श्रा३वय । ४-अस्तु श्रौ ३ षट् । २ यज । ५-ये३यजामहे । २ वौ ३ षट् । इस प्रकार जो चार चार दो पांच और दो अक्षरों द्वारा क्रमशः पुकारा जाता है उस सप्तदशाक्षरात्मक प्रजापति के लिये हमारा नमस्कार हो । ये ही प्रजापति यहां यज्ञरूप कहे हैं । वे प्रजापति परमात्मा दोनों प्रकार के हैं-वाणी से कहने योग्य और वाणी से न कहने योग्य तथा परिमित नाम-साकार और अपरिमित नाम निराकार । सो जो मन्त्र पढ़के मूर्त्ति का स्पर्शादि करता है जो इस का कहने योग्य साकार रूप है उसी का उस स्पर्शादि से संस्कार करता है । और जो तूष्णीं बिना मन्त्र पढ़े स्पर्शादि किया जाता है उस से जो इस प्रजापति का अकथनीय निराकार अपरिमित रूप है उस का संस्कार करता है । सो यह अध्वर्यु वा यजमान इस प्रकार इस सम्पूर्ण निःशेष प्रजापति का संस्कार करता है ।

तथा जो ऐसा जानता है वह भी दोनों प्रकार के साकार निराकार प्रजापति का संस्कार करने वाला माना जायगा। उक्त पांचवें प्रश्न के तीनों उत्तर आगये। परिमित साकार दश अंगुल ऊंची यज्ञात्मक प्रजापति की प्रतिमा बनाने का विधान ब्राह्मण ग्रन्थ में मन्त्र के साथ लिखा दिखा दिया है। उस के साथ कल्पसूत्र की साक्षी भी सर्वांश में मिलती है। उस प्रतिमा में मुख और नासिका बनाना भी दिखाया है और मट्टी की प्रतिमा बनाने का विधान है। इसी प्रकार पत्थरादि की मूर्त्ति बनाने का लेख भी मिल सकता है। यहां उदाहरण मात्र प्रमाण दिये हैं॥

(प्रश्न ६) मन्दिरों में तो रामकृष्ण देवी देवता हनुमानादि की मूर्त्ति देखी जाती हैं जो साधारण मनुष्य हो चुके हैं। ईश्वर की मूर्त्ति कहीं भी देखने में नहीं आती है। और न कहीं इस का वेदों में विधान मिलता है॥

(उत्तर ६) हम प्रजापति परमात्मा को ऊपर साकार निराकार दो प्रकार का मन्त्र ब्राह्मण कल्प के प्रमाणों से सिद्ध कर चुके हैं। उस में निराकार निरगुण ब्रह्म की मूर्त्ति बन सकना हम भी नहीं मानते किन्तु साकार सगुण अवतार लेने वाले ईश्वर की ही मूर्त्ति बनाते और पूजते हैं। रामकृष्णादि ही वास्तव में ईश्वर हैं। किन्तु तुम जैसा निराकार गोलमाल ईश्वर मानते हो वह ईश्वर कभी त्रिकाल में भी युक्ति प्रमाणों से सिद्ध ही नहीं हो सकता अर्थात् सगुण साकार होने वाला ही ईश्वर कहा जा सकता है निर्गुण निराकार नहीं। इसी लिये माण्डूक्योपनिषद् की छठी कण्डिका में सुषुप्त स्थान सर्वज्ञ अन्तर्यामी का नाम सर्वेश्वर कहा है। क्योंकि अल्पेश्वर तो मनुष्यादि भी ईश्वर कहाते हैं। इसी से राजा को भी ईश्वर कहा गया है। माण्डूक्य की सातवीं कण्डिका में निर्गुण निराकार अकथनीय ब्रह्म का वर्णन है वहां ईश्वर शब्द नहीं रक्खा गया। इस से सिद्ध है कि ईश्वर साकार ही हो सकता है। ईश्वर और राजा का एक ही अर्थ है। क्या समाजियों के मत में राजा को निराकार कहना बेसमझी नहीं है? राजा वह होगा जिस के अधिकार में फौज आदि बहुतसा सामान हो। जब फौज आदि सब साकार सामान है तो उस पर हकूमत करने वाला क्या निराकार होगा?। ऐश्वर्य नाम मिल्कियत जिस की हो वह ईश्वर नाम मालिक कहाता है। प्रयोजन यह है कि ईश्वर नाम साकार राम कृष्णादि अवतार धारण करने वाले की ही मूर्त्ति बन सकती उसी की पूजा स्तुति प्रार्थना उपासना हो सकती और होती है। उस का अवतार होना भी युक्ति प्रमाणों से सिद्ध है जिस के अवतार होना भी युक्ति प्रमाणों से सिद्ध हैं जिन

का विचार हो भी चुका और फिर होगा । यहां विषयान्तर होने से नहीं कहा जाता है । प्रथम तो इन समाजियों से पूछा जाय कि रामकृष्णादि कोई कभी हुए और उन ने ऐसे २ काम किये इस बात को तुम क्यों मानते हो ! ऐसा मानने में प्रमाण ही क्या है ? । सीधा यही क्यों नहीं मान लो कि राम कृष्णादि कोई भी नहीं हुए (सर्व गप्पम्) तो तुम झगड़ों से बच जाओगे । ऐसी दशा में उनके मनुष्य वा ईश्वर होने का विवाद सहज में मिट जायगा । यदि कहो कि इतिहास पुराणों में लिखा है इससे उनका होना मानते हैं । तो पूछा जाता है कि क्या इतिहास पुराणों का कहना प्रमाण है ?। यदि प्रमाण है तो उन्हीं इतिहास पुराणों से उनका ईश्वर होना भी प्रमाण मानना पड़ेगा । इससे तुम कदापि बच नहीं सकते । यदि कहोकि उनका होना तो युक्ति सिद्ध भी है तो ईश्वरावतार भी युक्ति प्रमाण दोनों से सिद्ध है । राम कृष्णादि के मनुष्य होने में प्रमाण ही क्या है ? अर्थात् कुछ भी प्रमाण नहीं । यदि कहो कि मनुष्य के से व्यवहार काम उनके बहुत लिखे हैं जिससे मनुष्य होना सिद्ध है । तो उत्तर होगा कि मनुष्य के से व्यवहार ईश्वर के निरुक्तकारने वेदमन्त्रों से ही दिखाये हैं ।

आद्भ्यामिन्द्रहरिभ्यां याहि । अद्धी·द्रपिबच ॥

अर्थ-हे इन्द्र आप दो घोड़ों की सवारी से आइये । हे इन्द्र तुम खाओ और पियो । तुम्हारे दो बाहू हैं इत्यादि प्रमाणों से जब ईश्वरका व्यवहार मनुष्यो का सा होना सिद्ध है तो रामकृष्णादि ईश्वरों का व्यवहार वा काम मनुष्यके से होने में घबराते क्यों हो ? । क्या चींटी का आंख से देखना पगसे चलना आदि व्यवहार मनुष्य का सा नहीं है तब क्या चींटी मनुष्य हो जाती है ? । कदापि नहीं । वैसे ही राम कृष्णादि ईश्वरों के व्यवहार वा काम मनुष्य केसे होने से वे भी मनुष्य नहीं हो सकते ।

पाठकगण ! इन समाजियोंका कहना ऐसा है कि जैसे रूप देखने के लिये आंख प्रमाण है यह सर्व सम्मत जानो । इस पर समाजी कहते हैं कि जोर रूप हमारी समझ के अनुकूल अच्छा है उसके लिये हम आंख को प्रमाण मानते हैं और जिस को हम बुरा समझते हैं वह भी यदि आंख से दीखता है तो वह आंख वेदविरुद्ध वा प्रक्षिप्त हैं । इसी के अनुसार रामकृष्णादि का मनुष्य होना बताने वाला इतिहास पुराण का हम को प्रमाण है। और उनका ईश्वरावतार होना वेदविरुद्ध वा प्रक्षिप्तहै । सो यह युक्ति विरुद्ध असम्बद्ध प्रलाप मात्र है॥

ब्रा० स० अं० १२ पृ० ५४४ से आगे सनातन अहिंसाधर्म-

अब तक वेदोक्तधर्म पर आक्षेप करने वाले जो २ जैन बौद्धादि इन लोगों में से ही खड़े हुए उन सब ने वेद को भी तिलाञ्जलि दे दी है। सो कदाचित् जैनादि की दशा भी पहिले ऐसी ही हो कि वेदमन्त्रादि का अर्थ लौट पौट मन माना करके अपना मत वेद से मिलाना चाहते हों पर जब उन लोगों ने देखा कि यह बन नहीं सकता तब वेद को भी छोड़ा हो यह अनुमान सत्य होना इस लिये अधिक सम्भवत है कि जैन लोग अब भी सांख्यदर्शन को अपने अनुकूल कई अंश में मानते हैं सो वास्तव में जैनों की भूल है क्योंकि वेद का मानने वाला होने से सांख्यदर्शन निरीश्वरवादग्रस्त कदापि नहीं है। और जैन लोग प्रसिद्ध में ही वेद को नहीं मानते। इसी के अनुसार वर्तमान आर्यसमाज अपने कल्पित मत को वेद के नाम से चलाना चाहता है। और वह मत वास्तव में वेद से विरुद्ध है। सो यह निश्चय है कि इतना प्रत्यक्ष झूठ चल नहीं सकता। इसी लिये समाजी मत अभी तक स्थिर नहीं हो पाया किन्तु मझधार में इस की भरी हुई नौका डगमगा रही है। वे समाजी लोग वेद को यथार्थ में मानलें यह तो बहुत कम सम्भव है। किन्तु यही होना सम्भव है कि जैनादि के तुल्य इस आ० समाज को भी वेद को तिलाञ्जलि देने पड़े सो कुछ भी हो समाजी मत वर्त्तमान दशा में जैसा है वैसा आगे कदापि रह नहीं सकता। मूल जड़ की बात यह यों और है कि (चोदनालक्षणोऽर्थोधर्मः) वेद में जिस काम को कर्त्तव्य कहा गया वही धर्म है। जब कि धर्म का लक्षण ही यह हो गया कि वेदशास्त्र जिस काम को जब जिस के लिये जिस अवस्था में जिस प्रकार से कर्त्तव्य बतलाता है वह उसी प्रकार ज्यों का त्यों किया हुआ धर्म है और यदि उस के किसी एक भी अंश में जहां अन्यथा विरुद्ध हुआ तभी वह अधर्म हो जाता है। इसी विचार से धर्म की सूक्ष्मगति कही मानी जाती है। वेद ने वसन्त ऋतु में ब्राह्मण का यज्ञोपवीत कहा है वह यदि वर्षादि ऋतु में विधि से भी किया जाय तो भी वेद विरुद्ध होगा। ब्राह्मणादि तीन वर्णों का उपनयन वेद में कहा है। यदि शूद्र का कराया जाय तो वेदविरुद्ध अधर्म करने कराने वाले दोनों को लगेगा। पांच से सोलह वर्ष के भीतर ब्राह्मण का यज्ञोपवीत कहा है वह यदि ५० वर्ष की अवस्था में प्रायश्चित्तादि के विना ही कराया जाय तो वेद विरुद्ध

होगा। जिस प्रकार कर्त्तव्य कहा है उस से विरुद्ध मन माना कृत्य करना भी वेद विरुद्ध है। इस से यह आया कि धर्म वही जिसे वेद ने कर्त्तव्य कहा है उस में अन्य दलील को अवकाश नहीं है कि यह हिंसा वा व्यभिचार वा अशुद्धि है दीक्षित पुरुष को यज्ञ दीक्षा के दिनों में दातौन करने स्नान करने आदि का निषेध है उस के लिये उतने काल में वही धर्म है और दीक्षाकाल में स्नान करना वेद विरुद्ध अधर्म है। जिस कन्या के साथ जिस प्रकार विवाह विधि पूर्वक संयोग करना वेद ने बताया वैसा ही करना वेदोक्त धर्म है उस विधि को छोड़ उसी स्त्री के साथ संयोग करना वेद विरुद्ध व्यभिचार है। इसी के अनुसार जिस यज्ञादि कर्म में जिस प्रकार जिस पशु का बलिदान वेद में कर्त्तव्य कहा है वहां वह कर्म हिंसा नहीं अधर्म नहीं किन्तु वेदोक्त धर्म है और जैसे वेदविधि के त्यागने पर उसी स्त्री के साथ का संयोग करना व्यभिचार हो जाता है कि जिस के साथ विधिपूर्वक स्त्री संयोग वेदोक्त धर्म था उसी के अनुसार वेद-विधि से विरुद्ध पशु को मारना हिंसारूप अधर्म ही है। चाहें यों कहो कि सब ओर से नियमों में जकड़ के बांधा हुआ वेदोक्त कर्त्तव्य धर्म कहाता है। ऐसी दशा में ऐसे नियमबद्ध यन्त्रित यज्ञादि कर्म को साधारण मनुष्य कदापि नहीं कर सकता। वा अधर्मी हिंसक निर्दयी लम्पटता आदि दोष ग्रस्त पुरुष यज्ञादि नहीं कर सकता। इसी कारण व्यास जी ने योगभाष्य में लिखा है कि—

देवब्राह्मणार्थं नान्यथा हनिष्यामीति।

देवता और ब्राह्मण के लिये ही केवल वेदोक्त पशुवध करूंगा अन्यथा कदापि नहीं करूंगा। प्रयोजन यह कि ऊपर दिखाये अनुसार सर्वथा वेदोक्त नियमों में बंधा हुआ जो कुछ यज्ञादि कर्म करता है उस में यदि कुछ हिंसादि भी है तो भी वह विधिविहित होने से विवाहादि के तुल्य वा दीक्षित के अपवित्र रहने के तुल्य धर्मकोटि में ही गिना जायगा। जो पुरुष वेदोक्त नियमों में बद्ध होगा वह वेदविरुद्ध हिंसा व्यभिचारादि से अवश्य घृणा अरुचि करके रुकेगा। इस लिये यज्ञादि कर्म गत हिंसा तथा ब्राह्मण की रक्षा के लिये किसी दुष्ट हिंसकादि का वध करना द्वितीय कक्षा का अहिंसाधर्म है क्योंकि वह हिंसा अहिंसारूप ही है। इस को द्वितीय कक्षा में इस लिये रक्खा गया कि प्रथम कक्षा के मुमुक्षु ज्ञानी पुरुष के लिये सर्वथा निष्काम होने से यह यज्ञादि कर्म भी नहीं है क्योंकि वेदविहित होने से

ज्ञादि कर्म सर्वथा वेदोक्त धर्म होने पर भी कर्म होने से कुछ दोष ग्रस्त अवश्य है कि (सर्वारम्भाहिदोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः)

सभी आरम्भ होने वाले कर्म मात्र धूम से अग्नि के तुल्य आच्छादित हैं। जैसे यद्यपि वेदोक्त विधि से ठीक विवाह करके स्वदारनिरत ऋतुगामी होनेवाला पुरुष वेदोक्त धर्मनिष्ठ समझा जायगा और जो ऋतुगामी होने आदि के नियम से रहित हैं उन से वह बहुत उच्च कक्षा का धर्मात्मा माना जायगा तथापि जो ऊर्ध्वरेता तपस्वी योगी पूर्णब्रह्मचारी हैं उनकी अपेक्षा वह ऋतुगामी भी नीची ही कक्षा में माना जायगा वैसे ही यह द्वितीय कक्षा का यज्ञादि करने वाला तपस्वी ज्ञानी योगियों से नीचा अवश्य माना जायगा ।

अथ तृतीय कक्षा का अहिंसाधर्म ।

तीसरी कक्षा का अहिंसाधर्म उन मनुष्योंमें रहता है जो कहने के लिये किसी समुदाय तथा मत में भले ही हों पर स्वभाव से उन में दया धर्म की प्रबलता और अधिकता हो । चाहें वे अंगरेज ईसाई मुसलमान जैन बौद्धादि वा हिन्दु तथा उन में भी शैव वैष्णवादि कोई क्यों न हों वा शैव वैष्णवादि किसी का झंडा न उठाकर श्रौतस्मार्त्त धर्म के मानने वाले सीधे सादे ब्राह्मणादि हों । परन्तु वे मद्यमांसादि का सर्वथा त्याग किये हों यह मानते हों कि मांस खायंगे तो वह किसी जीव की हिंसा होकर ही आवेगा उस हिंसा का दोष हमें भी लगेगा । ऐसे दयालु पुरुष अन्य का दुःख मिटाने के लिये स्वयं दुःख भोगना हर्ष पूर्वक स्वीकार कर लेते हैं । जिन को नीति वालों ने सत्पुरुष कहा है

एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्यये ।

अर्थात् अपना स्वार्थ कुछ भी न होने पर वा अपने स्वार्थ में हानि पहुंचा कर अन्य प्राणियों को सुख पहुंचाने के लिये जो परिश्रम करते वे संसार में सत्पुरुष सज्जन महात्मा परोपकारी कहाते हैं । ऐसे लोगों के हृदय में दया धर्म का प्रवाह नदी में जल के तुल्य निरन्तर बहा करता है । यह दया धर्म हिंसा का पूरा विरोधी है । जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार दूर होता है वैसे ही दया धर्म का पूर्ण उदय होने से हिंसा रूप द्वेष हृदय से भाग जाता है यह दया यज्ञादि करने वाले द्वितीय कक्षा के पुरुषों के साथ भी ऐसी ही वा-

इस से भी अधिक मानी जायगी। जैसे कि राजा हरिश्चन्द्रादि में थी। इस दूसरी कक्षा की अहिंसा में केवल वेदोक्त कर्म का जानना मानना तथा करना नहीं है इसी कारण वह पहिले से एक अंश में कम है। और इस तीसरी कक्षा में वेदोक्त पशुसंज्ञपन भी नहीं है यह तो इस में अधिकता है पर वहां वेद का त्याग इस कक्षा मे बहुत प्रबल कारण रहेगा और यहां कुछ अज्ञान अवश्य रहेगा इसी कारण ऐसे दयालु महानुभावों का अहिंसा धर्म तीसरी कक्षा का विचारशीलों के ध्यान में ठहरेगा।

अथ चौथी कक्षा का अहिंसा धर्म

यह चौथी कक्षा का अहिंसा धर्म उन मताग्रही लोगों में रहेगा जिनके मत में मद्य मांस जीवहिंसा करना मत के नियमानुसार सर्वथा निषिद्ध है। परन्तु इस के साथ ही उन शैव वैष्णव तथा जैनादि मतों मेंरहते हुए लोगोंग अपने देवता की उपासना ही सर्वथा कल्याणकारी मानकर अन्यमत वालों से पूरा द्वेष रखते अपने मन्दिर तथा देवप्रतिमा को अच्छा समझते अन्य मतों के मन्दिर तथा देवप्रतिमा को उन की चले तो तुड़वा देने तक तयार हैं। अन्यमत के मन्दिर में जाने वा देवप्रतिमा को देखने में भी पाप समझते हैं। ऐसे लोगों में जो अहिंसा धर्म वा मद्यमांस का त्यागादि रहता है वह अन्यमतों साथ के द्वेष रूप हिंसा से सदा ग्रस्त रहता है। इस कारण इस से पूर्व की तीन कक्षाओं में ही अहिंसा धर्म की प्रधानता मानी जायगी। और यह चौथी कक्षा अहिंसा तथा हिंसा की मध्यस्थ मर्यादा (मेंड) रहेगी। इस में हिंसा अहिंसा दोनों बराबर के दर्जे में रहेगी इस से अहिंसा की प्रबलता वा प्रधानता इस में नहीं है। तथा इस से नीचे की कक्षाओं कुछ नियत हों वे सब हिंसारूप अधर्म की प्रधानता को लिये होंगी। चंडी के उपासक देवी पर मेढ़ा बकरा काट २ चढ़ाने वाले भूत प्रेतों के उपासक मद्य मांसादि का होम करने वाले खाने वाले कामक्रोध में आसक्त नशाबाज वाममार्गी आदि धर्म के बहाने से काम क्रोधादि के सेवन में तत्पर मनुष्यों में यदि कुछ दयादि धर्म भी रहे तो हिंसा दोष से दब जायगा। इस कारण हिंसा ही प्रबल वा प्रधान रहेगी।

इनसे अधिक हिंसक ईसाई मूसाई महम्मदी आदि वे लोग माने जावेंगे जो पशुहिंसा में कुछ दोष हुए न मानते गौआदि का मांस खा २ कर अपना मांसबढ़ार-

हैं। तथा इन ईसाई आदि से कम हिंसक वे हैं जिन के यहां मांस खाने वा पशुवधका काम तो कुल परम्परा से होता है परन्तु उन के हृदय में दया प्रबल है इस से वे अन्य प्राणियों को सुख पहुंचाने तथा परोपकार करने में भी दत्तचित्त रहते सत्य ही का आचार व्यवहार उन को स्वीकार होता है। ऐसे लोगों का शिरोमणि धर्मव्याध एक पुरुष हुआ है जो धर्म के मर्म को जानता था जिस की कथा महाभारत में विद्यमान है। तथा पूर्वोक्त ईसाई आदि से अधिक हिंसक आज कल के निर्दयी कसाई वा मांस बेंचने वाले हैं। और इन कसाइयों से कुछ कम हिंसक वे हैं जो स्वार्थ सिद्ध करने के लिये अन्यों के काम बिगाड़ने, दुःख पहुंचाने में सदा ही दत्तचित्त तत्पर रहते हैं। अपना थोड़ा भी स्वार्थ सिद्ध होता हो उस के लिये अन्य की बड़ी से बड़ी हानि करने में जिन को कुछ भी लज्जा शङ्का भय सङ्कोच नहीं वे लोग कसाइयों के छोटे भाई अवश्य हैं। तथा कसाइयों से भी अधिक हत्यारे वे हैं जो अपना स्वार्थ कुछ भी सिद्ध नहीं होता तो भी अन्यप्राणियों वा मनुष्यों को दुःख पहुंचाने में सदा स्वभाव से ही तत्पर रहतेहैं। ऐसे मनुष्य राक्षसों से भी परे हैं। कदाचित् पाठकों में से किन्हीं का विचार हो कि इस हिंसा अहिंसा की कक्षा बन्धी में आ० समाजी किस कक्षा में रहेंगे इस का कुछ प्रसंग नहीं आया तो उत्तर यह है कि अधिकांश वा समाजी जो मद्य मांस कुछ नहीं खाते पीते वे तो चौथी कक्षा में चौथी पांचवीं के बीच में रहेंगे शेष उन से भी नीचे पड़ेंगे। अर्थात् पहिली तीन कक्षा जिन में अहिंसा धर्म की प्रधानता है उन में समाजियों का प्रवेश हो नहीं सकता। क्योंकि दया धर्म इन में विशेष कर नहीं दीखता।

यद्यपि इस हिंसा अहिंसा की कक्षाबन्धी में सब हिंसकादि का परिगणन नहीं आया। ब्रह्महत्या गोहत्यादि अनेकों का विचार शेष है तथापि जितना विचार लिखा गया उस से शेष का विचार लग सकता है। अब यह विचार शेष रहा कि जैसे सर्वोत्तम कक्षा का अहिंसा धर्म दिखाया गया जिस की किसी सन्धि में भी कहीं लेशमात्र भी हिंसा का प्रवेश नहीं है वैसे ही सब से बड़ा अन्तिम कोटि का हिंसा अधर्म कौन है?। जिस में हिंसा की सीमा वा अवधि हो जावे। तो इस का उत्तर यह है कि कृतघ्नता सब से बड़ी हिंसा जिस को विश्वासघात भी कह सकते हैं। इस में धोखा देने का मुख्य

काम है जिस से अपना उपकार हो जीवन की रक्षा हो सब प्रकार पालन पोषण हो उस को धोखा देके उस के प्राण तक लेने को तत्पर होने वाला विश्वासघाती सब से बड़ा हिंसक है। हमारी राय में हिंसा रूप अधर्म की यहीं अवधि वा सीमा है ? । अब इस लेख को यहीं समाप्त करते हैं विस्तार की सीमा नहीं फिर कभी किसी अंश पर लिखने की आवश्यकता हुई तो तब लिखेंगे। ओं शान्तिः ३ ॥

शंकासमाधान विषय ॥

श्रीमद्भागवत में अशुद्धियों का विचार ॥

जैसे अन्त समय जब आता है तब चीटियों के पंख जमते हैं वैसी ही सम्प्रति इस वेदविरुद्ध समाजी मत की दशा होती जाती है। श्रीमद्भागवत जैसे बड़े पाण्डित्य के ग्रन्थ में ऐसे छोकरे जिन ने व्याकरण के कान पूंछ भी अब तक नहीं जान पाये वे क्या अशुद्धि निकालेंगे। इस विषय के उत्तर का नमूना आगे इसी अं० पृ० २४ में प्रेरित छपा है उसे देख कर तु० रा० को संतोष करना चाहिये। परन्तु अब इतने सन्तोष से तु०रा० आदि का छुटकारा हो नहीं सकता क्यों कि श्रीवैष्णव धर्मप्रचारिणी सभा वृन्दावन के मन्त्री खुले मैदान अब आर्यसमाजियों को चैलंज देते हैं जो पत्र इसी अं० के पृ० २४ में आगे छपा है। अब यदि तु० रा० आदि समाजियों को पण्डिताई का कुछ भी बल है तो वृन्दावन में चल कर शास्त्रार्थ करलें अथवा दोनों की राय जहां होजाय वहां सही। यदि इस चैलंज पर समाजी चुप रहे तो इनका पराजय सर्वांश में सिद्ध होजायगा। उसी शास्त्रार्थ में श्रीमद्भागवत की अशुद्धियों का भी शास्त्रार्थ हो जायगा जिस से समाजियों में कौन २ वैयाकरण शार्दूल हैं यह भी प्रकट होगा। अभी हम केवल उस वैयाकरण से इतना ही पूछते हैं कि— (यूस्त्रियाख्यौ नदी) पाणिनि के सूत्र में पढ़ा स्त्रियाख्य शब्द पणिनीय व्याकरण के अनुसार शुद्ध है वा अशुद्ध ? तदनुसार—

ब्राह्मणेभ्यःप्रियाख्येभ्यः सोयमुञ्छेनजीवति ॥

श्लोक में भी प्रियाख्य शब्द शुद्ध है वा अशुद्ध ? । इस प्रश्न का उत्तर देने से तु० रा० के लेख प्रेरक तथा तु० रा का अनुमान होगा कि व्याकरण कैसा जानते हैं। और इसी उत्तर से भागवत की अशुद्धियों का भी फैसला सहज में हो सकेगा।

वैदिक समय की संज्ञा–

यह हेडिंग तु० रा० ने- पृ० १०५ में देकर वेद विषय में अपना उपहास विद्वानों में कराया । प्रथम तो शोचिये " वैदिक समय की संज्ञा " यह हेडिंग कैसा विचित्र है । इस से यह ज्ञात होता है कि वैदिक समय खास कुछ दिनों तक नियत था । उस से आगे पीछे लौकिक रहा । अब वैदिक समय नहीं यह अर्थापत्ति से आया । जब वैदिक समय ही अब नहीं तो वेद नाम ले २ कर हल्ला उठाना व्यर्थ क्यों नहीं हुआ ? । वास्तव में यह हेडिंग आर्यसमाज के सिद्धान्त से भी सर्वथा विरुद्ध है । जब वेद ईश्वरीय वाक्य है और ईश्वर सदा एकरस है तब क्या उस की वाणी किसी खास समय के लिये हो यह ठीक है ? कदापि नहीं क्योंकि समझदार आर्यसमाजी भी इस लेख को सर्वथा सिद्धान्त विरुद्ध समझेंगे । आगे तु० रा० १५ मुहूर्त दिन के १५ रात के लिखते हैं । अर्थात् ३० । ३० । घड़ी का दिन रात होता था । सो हम पूछते है कि क्या पहिले वैदिक समय में हेमन्त और ग्रीष्म में भी दिन रात बराबर ही होते थे यदि ऐसा था तो ग्रीष्म हेमन्त ऋतुओं का भी पहिले होना नहीं बन सकेगा क्योंकि दिन के बढ़ने से ग्रीष्म ऋतु और रात के बढ़ने से हेमन्त की सिद्धि होती है । प्रयोजन यह कि ऐसी ही बेसमझी की निष्प्रयोजन बातें पृ० १०५ । १०६ । १२५ में लिखी हैं । यदि कलकत्ते के सामश्रमी का उलथा कहो तो वेद विषय में सामश्रमी का मत ही सब से निराला आर्यसमाज से भी विरुद्ध है । सामश्रमी वेद को अनादि अपौरुषेय ईश्वर निःश्वसित नहीं मानते किन्तु मनुष्यों का बनाया मानते हैं सो आर्यसमाज के सिद्धान्त से भी विरुद्ध है । इसी कारण सामश्रमी के मत में उक्त हेडिंग बन सकता है । हां तु० रा० को सामश्रमी के उथा प्रबन्ध का उलथा करके कुछ लिखने को मसाला मिलगया जिस से अपना पत्र पूरा जैसे तैसे करते हैं इस लेख से यह प्रयोजन तो अवश्य है ।

तु० रा० का विधवा विवाह से विरुद्ध होना–

वेद प्र० १४८ से १५४ तक में आपस की फूट का झगड़ा विधवा विवाह विषय पर छपा है । यद्यपि यह झगड़ा अभी ऐसा नहीं दीखता कि आ० समाजी मत की जड़ में कुठाराघात जान पड़े पर इत्यादि झगड़े का परिणाम समाजी मत के लिये विषरूप अवश्य है । नियोग के विषय में लेख द्वारा अच्छा फैसला हो चुका है । अब कुछ विचार उस विषय में बाकी नहीं है । नियोग निन्दित कर्म है इसी से बन्द हो गया । और बस का कर सकने वा-

ता भी भूमंडल भर पर आज कोई नहीं तब उस का विवाद भी व्यर्थसा है। अब तक समाजियों में कहीं एक भी नियोग नहीं हुआ किन्तु घेर घार के विधवा विवाह जब २ कराते रहे तब २ उसका नाम नियोग कराया ऐसा कपा २ के हल्ला करते रहे सो यह स्वा० द० के लेख से भी विरुद्ध था। परन्तु तु० रा० अब भी समाजियों से डरते हुए गिरते हैं कि—अक्षत योनि कन्या का पुनर्विवाह हो सकता वा शास्त्रानुकूल कर्त्तव्य है। इस के लिये हमारा एक ग्राहक तु० रा० को चेलेंज देता है कि वेद के किसी मन्त्र से तु० रा० सिद्ध करदें जिस में लिखा हो कि विवाह कृत्य होने पश्चात् संयोग होने से पहिले विवाहित कन्या का पति मर जाय तो उस का अन्य पुरुष के साथ विवाह कर दिया जाय। यदि वे तीन महिने की अवधि में ऐसा वेद से सिद्ध करदें तो १००) इनाम देगा। रहा स्मृतियों का विचार सो पीछे हो जायगा क्यों कि वेदानुकूल होने से स्मृति का प्रमाण माना जायगा। प्रयोजन यह कि अक्षतयोनि का पुनर्विवाह भी वेद और धर्मशास्त्र की मर्यादा से विरुद्ध है।

आ० समाज में अशान्ति

वे० प्र० पृ ११३ से ११७ तक में अशान्ति मिटाने के उपाय बताने के बहाने से कुछ लिखा है पर उपाय फिर भी कुछ नही बताया। सो बतावें कहां से वेदशास्त्र विरुद्धता में भी यदि शान्ति होजाय तो अशान्ति विचारी कहां रहेगी। यदि तहखाने आदि में भी सूर्य का प्रकाश पहुंच जाय तो अंधेरा कहां रहेगा प्रयोजन यह कि अशान्ति मिटाने के उपाय बताते हुए वे० प्र० ने आ० समाज में अशान्ति तो मानली है। हमारी राय में समाजियों का सिद्धान्त ही ऐसा है जिस में विचारे धर्म को धक्के लग रहे हैं। और धर्म को जो धक्के लगते हैं वह स्वयं धक्का देने वाले को ही पटक देता है।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

जब तक धर्म की रक्षा न करोगे किन्तु उसे धक्के दोगे तब तक वे सब धक्के तुम को ही लगेंगे शान्ति कदापि न होगी कागज भले ही काले किया करो। शान्ति चाहो तो वेद को तथा धर्म को धोखा मत दो।

वे० प्र० पृ० ११७ से १२० तक में श्रीमद्भागवत पर कुछ मनमाना बेसमझी से लिखा है। प्रियव्रत के पुत्र ने ग्यारह अरब वर्ष राज्य किया इस पर ऐतराज यह है कि—४ चार अरब वर्ष सृष्टि रहती है तो ११ अरब वर्ष राज्य कैसे किया? यह गप्प नहीं तो और क्या है?।

इस का संक्षेप से समाधान यह है कि चार अरब वर्षों का ब्रह्म दिन होता है। उस के पश्चात् ब्रह्मा की रात में मानुषी सृष्टि भूमण्डलादि सब का प्रलय हो जाता है। परन्तु ब्रह्मा का प्रलय नहीं होता तो दैवी सृष्टि का भी प्रलय न होना सिद्ध है। स्वायम्भुवादि मनु तथा प्रियव्रतादि सब ब्रह्मा का ही कुटुम्ब हैं जब ब्रह्मा के कुटुम्ब का काल प्रलयमें प्रलय ही नहीं होता तो ११ अरब वर्ष जितना अधिक लिखना वह सत्य है। यदि कोई चार अरब वाले प्रलय में ब्रह्मा जी के प्रलय का भी हठ करे तो उस के मत में महा प्रलय ही न बनेगा। क्यों कि महाप्रलय वही है जब ब्रह्मा जी का भी प्रलय हो जावे। इस से सिद्ध है कि कालप्रलय में ब्रह्मा जी का प्रलय नहीं होता तब प्रियव्रत का ११ अरब वर्ष तक राज्य करना बन सकता है। इस से यह श्रीमद्भागवत का लिखना तो गप्प नहीं परन्तु गप्पाष्टकी ने तुम्हारी समझ को ही गप्प करदिया। हमने कई वार लिखा है कि एक मूल सिद्धान्त का ठीक बोध किसी को हो तो उसके सब सन्देह उस विषयके मिटजावें। पर इनको निश्चय करना तो नहीं यदि निश्चय सिद्धान्त हो जाय तो फिर तु०रा० लिखें ही क्या?। यदि वेद के सिद्धान्तानुसार देवता कौन कैसे और कहां हैं उन की सृष्टि कैसी है उन की शक्ति क्या है। वे क्या २ कर सकते हैं। ऐसा विचार स्थिर हो तो अपने मनुष्यों के से दोष उन पर फिर लगाने का अवकाश ही न रहे।

शंका—प्रियव्रत के रथ की सात लीकें सात समुद्र हुये। यह भागवत का लेख वेद से विरुद्ध है वेद में (ततः समुद्रो अर्णवः०) इत्यादि प्रमाणों से समुद्र का होना सनातन सिद्ध है॥

समाधान-जैसे पृथिवी एक स्त्री और मेघ वा सूर्य एक पुरुष है इन दोनों स्त्री पुरुषों के संयोग से वृक्ष वनस्पत्यादि सन्तान पैदा हुआ करते हैं। पर इस में कोई शंका करे कि पृथिवी स्त्री किस खटिया पर लेटती है उस खटिया के चारों पाये कहां रक्खे जाते हैं। इत्यादि तो यह शंका करने वाले की वेसमझी मूर्खता विद्वानों को जच जायगी। सो के अनुसार यहां भी जानो कि पुरुषाकार होने पर भी प्रियव्रत कोई हमारा जैसा छोटा सा पुरुष नहीं था उस का रथ भी वर्त्तमान रथों की बराबर लकड़ी आदि का बना नहीं था किन्तु प्रियव्रत नाम रूप वाले सब के विधाता सृष्टि कर्त्ता ब्रह्मा जी ने जिस साधन से सात समुद्र उत्पन्न किये वही उन का रथ था। अब रहा वेद से विरोध दिखाना सो वेद का आशय लेकर ही तो पुराण बने हैं वा यों कहो कि वेदार्थ वेद के भाष्यादि रूप ही इतिहास पुराण हैं तब वेद से कभी

तीन काल में भी विरोध नहीं आसकता । तु० रा० आदि को विरोध दीखने का कारण यह है कि वे लोग संसार के सभी मतों से विरोध करना अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं । आ० समाजी कहो वा सभी मतों से विरोध रखने का ठेकेदार कहो दोनों एक ही बाते हैं । जब विरोध का ठेका ही लेलिया तो विरोध क्यों कर न दीखे ?।

वेद का अर्थ वा आशय समझना भी हंसीखेल नहीं है। वेद के निघण्टु में समुद्र नाम अन्तरिक्षका है । यद्यपि समुद्र शब्द के सामान्यार्थ पृथिवी का समुद्र भी समुद्र शब्द से लिया जा सकता है तथापि अन्तरिक्ष समुद्र ही अपार अनन्त होने से प्रधान तथा पृथिवी का समुद्र गौण छोटा सान्त है । प्रधान अप्रधान दोनों की प्राप्ति में प्रधान का ही ग्रहण होता है इस क़ायदे के अनुसार वेद में भी अन्तरिक्ष समुद्र लिया जाता है । प्रथम प्रकाश रहित होने से रात्री नाम पृथिवी हुई उस से समुद्र नाम अन्तरिक्ष तथा उस से अधि नाम ऊपर संवत्सरोपलक्षित काल सूर्यात्मक हुआ । इस प्रकार वेद ने सृष्टि का क्रम दिखाया है । अन्तरिक्ष समुद्र में भी सात परिधि वेदादि शास्त्र सम्मत हैं और वे प्रियव्रत के रथ चक्रों से ही नियत हुई हैं वहां कोई स्थूल छोटा सा रथ नहीं चलाया गया । अन्तरिक्ष समुद्र की सात परिधियों में क्षारादि रस भी भिन्न २ हैं उसी से पृथिवी के वृक्षादि में वे २ रसादि आया करते हैं । इस विषय का विशेष विचार पुष्कि प्रमाण सहित फिर कभी होगा । प्रयोजन यह कि वेदानुकूल होने से पुराणों की कथाओं का अभिप्राय बड़ा गम्भीर है । दुराग्रह छोड़ें तो कदाचित् समाजियों की समझ में आवे ।

शङ्का—पुराणानुसार लाख वर्ष से अधिक किसी युग में आयु नहीं होता॥

समाधान—आमतौर से हम भी सब किसी का आयु ऐसा बड़ा नहीं मानते । न पुराण ग्रन्थों का ही ऐसा आशय है किन्तु पुराणादि में साधारणों के इतिहास भी नहीं लिखे जाते । और प्रियव्रतादि भी कोई सामान्य मनुष्य नहीं थे दैवीसृष्टि के प्राणियों का आयु जितना लिखाजाय सो सभी सत्य और युक्ति प्रमाणों से सिद्ध है । यह नमूना मात्र उत्तर संक्षेप से दिखा दिया गया है ।

मिथ्या लेख ॥

वे० प्र० के पृ० १२३ । १२४ में एक प्रेरित पत्र छपा है । वह पत्र आ० स-

सभा परमहा छत्तीसगढ़ की ओर से है उस में अन्य बातों के साथ निम्न लेख भी छपा है " इसी तरह इस प्रान्त के समाजों के उत्सव समय हमारे भाइयों ने पं० भीमसेन शर्मा को बुलाया था पर वह भी अपनी दाल गलती न देख पूना ले चले गये " यह लेख सर्वथा असत्य मिथ्या है। छत्तीसगढ़ प्रान्तीय सभाओं में आज तक हम कभी नहीं गये न हमें किसी ने बुलाने का विशेष उद्योग किया। हम कईवार लिख चुके हैं कि असत्य झूठ महा मिथ्या बातें लिखनेसे आ० समाजियों को लज्जा शंका अब क्यों नहीं होती। इसी से इन में अशान्ति दिन २ बढ़ती जाती है। हर्दुआगंज का मिथ्या वृत्तान्त लिख कर आर्यमित्र में छपा दिया है। हम फिर भी तु०रा० आदि समाजियों को सचेत किये देते हैं कि यदि ये अपना भला चाहते हैं तो मिथ्या से लज्जा माननी चाहिये।

नियोग का फिर घसीटना—

हम नहीं समझते कि जिन विषयों का श्रुतिस्मृति विरुद्ध होना सिद्ध हो चुका सेठ माधवप्रसाद और तु० रा० का फैसला ब्रा० स० भा० ३ अं० ३ में छप चुका है जिस से तु० रा० को लज्जित होने पड़ा था। पर फिर भी वही पिष्ट पेषण ले बैठे। महा भारतादि में विदुर की उत्पत्ति जैसे हुई है सभी जानते हैं क्यां किसी से छिपा है। पर विदुर की उत्पत्ति किसी के लिये विधिवाक्य तो नहीं कि जैसे दासी में विदुर जी पैदा हुए वैसे दासी में सन्तान पैदा किया करो। अथवा मतङ्ग के उत्पन्न होने के तुल्य किया करो। बात यह है कि इतिहास पुराणों का विषय लोकवृत्त-लोगों का वर्त्ताव है जिसने जैसा किया जिस को जैसा करने की जब जिस २ कारण आवश्यकता हुई तब २ उस २ ने वो २ किया वैसा इतिहास पुराणों में लिख दिया गया है। किन्तु वहां यह नहीं लिखा कि ऐसा ही आगे २ होने वाले ब्राह्मणादि सब किया करें अब तक ये समाजी मनुस्मृति की ओर दौड़ा करते थे जब मनु के प्रमाणों से ही इनके नियोग पुनर्विवाहका चूर २ खण्डन हो गया तबसे अब मनुकी ओर नहीं दौड़ते। हम को वात्स्यायन ऋषि ने बता दिया है कि

लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः।

संसार के व्यवहार कौन काम किस तरह करें इसकी व्यवस्था—(फैसला) देना धर्म शास्त्रका विषय है इस को धर्मशास्त्र में देखना चाहिये कि नियोगादि कैसा है। इतिहास पुराणों में लिखे काम जिनको धर्म शास्त्रमें भी कर्त्तव्य कहदिये वे तो कर्त्तव्य हैं। शेषके लिये धर्मशास्त्रों मे यह व्यवस्था सब के लिये लिख दी गयी है कि—

अनुष्ठितंतुयद्देवै-र्मुनिभिर्यदनुष्ठितम् ।
नानुष्ठेयंमनुष्येण तदुक्तंधर्ममाचरेत् ॥

कि देवताओं और मुनियों ने जिन कामों को किया है उनको मनुष्य न करें किन्तु धर्मशास्त्रों द्वारा मुनियों ने जो कर्त्तव्य मनुष्य के लिये कहे हैं उन को ही करें देवता तथा ऋषि मुनियों की शक्ति भिन्न थी साधारण मनुष्य उन की बराबरी नहीं कर सकते। पुनर्विवाह को तु०रा० भी अच्छा नहीं मानते जिस का झगड़ा आपस में ही चल रहा है नियोग हो नहीं सकता तब इस विषय पर व्यर्थ क्यों समय खोया जाता है ! ।

आगे (जनकस्य सुत०) इत्यादि किसी ऊटपटांग काव्य के श्लोक का टुकड़ा लिख कर तु०रा० सनातनधर्मियों पर आक्षेप करते हैं क्या वह काव्य कोई सनातन धर्म का पुस्तक है। वा वह कवि कोई ऋषि महर्षि है जिसका प्रमाण किया जाय । अर्थात् दाबा मिथ्या होने से सर्वथा त्याज्य है ॥

वे०प्र० पृ० १३० में वीतहव्य का बिना ही गुण कर्मों के भारत में लिखे अनुसार मान लिया। हमारी राय में रणजीतसिंह भंगी जो बड़ौदा के स्टेशन पर है जिस को सब भाई बन्धों सहित किसी पञ्जाबी डाक्टर ने जनेऊ पहनाया है। अर्थात् वहां के २० भंगियों को जनेऊ पहनाया गया है वे बीसो भंगी हर समय कान पर जनेऊ चढ़ाये रहते तीसरे दिन केशर में जनेऊ रंगते हैं। वह पञ्जाबी उन के घर का बना दाल भात रोटी भी खाता है सो वे लोग अपना धर्म छोड़ तुलसीराम के शरण में आजावें तु०रा० उन को ब्राह्मण कह दें। अब तु०रा० ने ढंग अच्छा सोचा है कि कोई अपना धर्म छोड़ किसी के शरण में वा हमारे आश्रय में हो जाय तो हम उन के वर्ण को बदलें मान चढ़ावें। क्या गुण कर्म से वर्णव्यवस्था मानने का यही मतलब था। क्या तु० रा० का यह मान लेना आ०समाज के सिद्धान्त से विरुद्ध नहीं है ? ।

क्या आर्य समाजी लोग शाप वरदान को मान सकते हैं ?। क्या ऐसा मन्तव्य आर्यसमाज के सिद्धान्त को धक्का देने वाला नहीं है ?। परन्तु ऐसा कौन सोचे विचारे आ० समाजियों को अभी यह देखने सोचने की फुरसत ही नहीं कि तु० रा० आर्यसमाज के सिद्धान्त से विरुद्ध क्या २ लिखते हैं। अभी केवल समाजियों को यह अपेक्षा है कि आ० स० हमारे लिये एक बड़ी विपत्ति है उनका खण्डन उलटा सीधा सिद्धान्त से विरुद्ध वा अनुकूल कैसा ही कोई करे वही हमारा मित्र है। हम एक बार पहिले भी समाजियों को

सूचित कर चुके हैं तथा अब फिर भी सचेत करते हैं कि यदि वास्तव में समाजियों का यह मत है कि वेद हमको सर्वथा परम आदर के साथ माननीय हैं वेद अनादि अपौरुषेय परमात्मा की नित्य विद्या है तो वे लोग हमारे इन अक्षरों का भविष्यत् के लिये पूरा ध्यान रक्खें कि तु० रा० ने न तो वेद का कान पूछ अबतक कुछ जान पाया और न इस जन्म वा जन्मान्तर में भी कुछ भी मर्म जान पानेकी आशा है। यह बात सर्वथा सत्य है। अर्थ काममें आसक्त पुरुष वेद वा धर्मका मर्म कदापि जान ही नहीं सकता। तथा व्याकरणादि शास्त्र के बोधकी भी आवश्यकता वेदको जानने के लिये है।

विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयंप्रहरिष्यति ॥

अल्पश्रुत मनुष्य से वेद डरता है कि खण्डन के अर्थ तत्पर हुआ भी यह मेरा खण्डन करेगा। सो अज्ञान लोभ और स्वार्थग्रस्त होने से तु० रा० का लेख आ० समाज के लिये भविष्यत् में विषरूप बनेगा। और हमारा लेख जो अभी विषवत् जान पड़ता है वह भविष्यत् में अमृत के तुल्य रक्षक होगा क्योंकि—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ॥

तु० रा० को तो दिन वा रात दोनों में कुछ दीख पड़ना सम्भव ही नहीं है। पर हम समाजियों पर छोड़ते हैं कि वे पक्षपात छोड़के अपने धर्मसे कहैं कि स्वा० दयानन्द का क्या यही सिद्धान्त था कि कोई क्षत्रिय मनुष्य डरपोंक भय भीत होके अपने धर्म को त्यागदे अपने धर्मसे पतित होजाय इतने से वा किसी का शरण लेले और वह कहदे कि तुम अमुकवर्ण होजाओ इतने से समाज के सिद्धान्तानुसार ब्राह्मण हो सकता है?। तो आप को मानने पड़ेगा कि ऐसा कदापि नहीं हो सकता क्यों कि गुणनाम विद्या वेदादि को पढ़ना जानना और कर्मनाम वेदोक्त सन्ध्या पञ्चयज्ञादि विशेष परिश्रम से त्याग के साथ किसी नियतकाल तक करे तो उसका वर्णबदल जाय अपने से उच्च वर्ण हो जाय। यह स्वा० द० का सिद्धान्त है। इसके अनुसार बीत हव्यने कुछ गुण कर्म नहीं किया तो वह समाजी सिद्धान्त के अनुसार ब्राह्मण कदापि नहीं हो सकता। झगड़ा केवल इसबात पर था और है कि अच्छे बुरे गुण कर्मसे वर्ण बदल सकता है वा नहीं सो सिद्ध हो गया कि नहीं इससे यहां भी तु० रा० का पराजय सिद्ध होगया ॥

श्रीमद्भागवत् में कोई अशुद्धि नहीं है। (प्रेरित)

वै० प्र० भा० ९ पृ० ७९ में एक फावड़े से घास खोदने वाले घास पार्टी

के विद्यार्थी ने भागवत में अशुद्धि दिखाने का साहस ऐसा ही किया है कि जैसे ऊंचे फलों को तोड़ने के लिये कोई बौना मनुष्य व्यर्थ ही उछल कूद म चाने लगे। उन में पहिली अशुद्धि यह दिखाते हैं कि (द्वैपानो विरह कातर आजुहाव) यहां–दूराद् धूते च। ८। २। ८४) से प्लुत होकर सन्धि कार्य नहीं होना चाहिये था फिर किस व्याकरण से करोगे ? ॥

समाधान–प्लुत किस शब्द को होना चाहिये किस सूत्र से होना चाहिये उस का अर्थ क्या है ऊपर के वाक्य में सन्धि किस के साथ किस की हुई है अशुद्धि क्या है उस के स्थान में शुद्ध प्रयोग कैसा होगा ? इत्यादि कुछ भी न लिख कर गोलमाल लिख देने से कुछ नहीं होता। वास्तव तो यह है कि भागवत के उक्त वाक्य में कुछ भी अशुद्ध नहीं है। (दूराद्धूतेच) सूत्र से सम्बोधन में प्लुत होता है क्या · (द्वैपायनो०) इत्यादि में कोई सम्बोधन पद है ?। यदि है तो कौन है। यदि नहीं है तो अपना उपहास कराने के लिये अशुद्धि का नाम क्यों ले बैठे। क्या तु० रा० के यहां मालिक से भी कम दृष्टि के संशोधकादि रहते हैं जिन में से किसी ने यह भी न देखा कि यह प्रेरित लेख छपाने लायक है वा नहीं ?। जिस के प्रथम ग्रास में ही मक्षिकापात होगया वह भागवत की अशुद्धि कैसी दिखावेगा इस का अनुमान पाठक लोग कर लेवें। ब्र० दे० श०

श्रीमद्भागवतम्महापुराणं विजयते ।

यच्च वैशाखमासस्य वेदप्रकाशे परशुरामशर्मणा „भागवत में अशुद्धियं" इत्यादि प्रबन्धो लिखितः, तत्र न तावल्लेखकस्य पाण्डित्यञ्चापि विचक्षणता। इमआर्षप्रयोगाः स्वतएवटीकाकृद्भिर्लिखिताः तत् समाधानानि च तत्र तत्रोपलभ्यन्ते। „यम्प्रव्रजन्त" मित्यादिश्लोके सन्धिकार्यन्तु श्रीमद्भट्टोजिदीक्षितैरपि प्रौढमनोरमायां साधुत्वेन स्वीकृतम्. आदौ तत् खण्डनँक्षस्यम्। तत् परमन्येषामुत्तराणि देयानि· किञ्च श्रीमद्भागवतस्य वोपदेवकृतत्वे कानि प्रमाणान्याध्र्यंसामाजिकैर्दत्तानि,तानि स्वप्नेऽपिकेनविलदृष्टानि.भवतुनामास्मिन्विषये प्रत्यक्षोवादविवादः श्रीवृन्दावनवासिनो विद्वांसो विचाराणंमुद्यताः। विचारव्ययश्चास्माभिस्स्वीकृतः। स्वीकृतेचशास्त्रार्थे तिथ्यादिकन्निर्धारणीयमिति दिक् ॥

श्रा० शु० ११ सं० १९६२

श्रीराधाचरण गोस्वामी श्रीवैष्णवधर्म

–प्रचारिणीसभाया मन्त्री श्रीवृन्दावनम्

आ० स० अं० १७ पृ० ४६० से आगे विधिवाद ॥

पर फल के विषय में यह प्रश्न कर सक्ते हैं कि धान के कूटने से क्या बनावें ? तब आप 'धर्म, वा 'चावल, इन ही दो फलों में से एक फल को बतासक्ते हैं और यहां पर " लभ्यमाने फले दृष्टे नाऽदृष्टपरिकल्पना " 'जब तक दृष्ट फल मिलता जावे तब तक 'अदृष्ट, फल (धर्म) की कल्पना नहीं करनी चाहिये, यह न्याय उपस्थित होता है, इस न्याय के आधीन होकर अदृष्ट (धर्म) फल को छोड़ कर तण्डुल (चावल) रूप दृष्ट फल ही को बता सक्ते हैं, और जब आप यह कहेंगे कि धान कूट कर चावल बनावें, तब फिर प्रश्न उठेगा कि उन चावलों से क्या ? करोगे तो आप कहोगे कि जो " तण्डुलान्निर्वपति " इस विधि से तण्डुलों का निर्वाप विहित है वह ही किया जावेगा उस से क्या ? होगा, याग की सिद्धि, उस से फिर क्या ? होगा, यह प्रश्न होने पर तो याग की समाप्ति के अनन्तर याग ही नहीं रहता उस का दृष्ट फल क्या ? बता सक्ते हो अगत्या इस स्थान में आप 'धर्म, ही फल मानोगे और पूर्वोक्त नियम का पालन भी ठीक होगया कि-दृष्टफल जहां तक मिला अदृष्ट की कल्पना नहीं की किन्तु जब कोई दृष्ट फल का सम्भव नहीं रहा तब ही 'धर्म, फल की कल्पना की गई है। इस से आप समझ लीजिये कि " व्रीहीनवहन्ति " इस वाक्य को किस तरह स्वतन्त्र मान सक्ते हैं।

क्योंकि " दर्शपौर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत " " वाजपेयेनस्वाराज्यकामो यजेत " इत्यादि विधिवाक्य जो प्रधान कर्म (साक्षात् धर्म के उत्पन्न करने वाले) " दर्शपौर्णमास " और " वाजपेय " आदि को विधान करते हैं, उन कर्मों के उपयुक्त कर्मों के विधान करने वाले (गोदोहनादि विधायक) वाक्य सब उन से दृष्ट फलों को बोधन करते हुये परम्परा से प्रधान कर्म के द्वारा ही धर्म को बोधन करते हैं, । इस से अब यह सिद्ध हुआ कि प्रधान कर्म के बोधक वाक्य में जो विधिबोधक क्रियापद है उस में 'एव, कार जोड़ने से नियमवाक्य की अभिव्यक्ति (स्वरूप ज्ञान) होती है जैसे " ऋतौ भार्यामुपेयादेव " यह पुत्रोत्पादन विधि साक्षात् धर्म को उत्पन्न करने वाले कर्म (पुत्रोत्पादन) को विधान करता है इस ही से इस की 'उपेयात) इस क्रिया में 'एव, कार जोड़ने से नियमविधि होता है, परिसंख्या विधि नहीं हो सक्ता । और 'एवकार इच्छा से सर्वत्र नहीं जोड़ा जाता है

किन्तु वाक्य के सामर्थ्य ही से उस का उन्नयन होता है। उस में प्रकार हम पहले दिखा चुके हैं। इस से पूर्वोक्त नियम की कोई हानि नहीं है।

मिताक्षराकार को अपने से प्राचीन आचार्यों का ऐसा लेख भी मिला है जिन्हों ने „ ऋतौ भार्यामुपेयात ” यह विधि „परिसंख्या” स्वीकार किया है उन लोगोंका यह अभिप्राय है कि—इस उक्त वचन („ऋतौभार्यामुपेयात् ”) में क्या युक्त है „परिसंख्या ” क्योंकि जिस पुरुष ने विवाह कर लिया उस की अपनी इच्छा ही से ऋतुकाल में भार्यागमन में प्रवृत्ति होजाती है। अतः विधि का यह विषय नहीं है, और नियम का भी विषय नहीं हो सकता, क्योंकि—गृह्यस्मृति का विरोध होता है यह गृह्यस्मृति इस प्रकार की है —

„ दारसंगृहाऽनन्तरं त्रिरात्रं द्वादशरात्रं संवत्सरं वा ब्रह्मचारी स्यात् ”

दारसंग्रह के अनन्तर तीन दिन वा बारह दिन अथवा एक वर्ष तक ब्रह्मचारी रहे।

जब कि दार (भार्या) के ग्रहण से पीछे बारह दिन वा वर्ष के मध्य में स्त्री का ऋतुकाल आजावे तो „ ऋतौगच्छेदेव ” ‘ऋतुकाल में गमन अवश्य करे, इस नियम से उस ब्रह्मचर्य का बाध होगा। क्योंकि ब्रह्मचर्य और भार्यागमन दोनों एक काल में हो नहीं सकते ब्रह्मचर्य में पृथिवी पर सोना, स्त्रीगमन का त्याग इत्यादि नियम होते हैं। और दूसरा नियम न होने में यह भी कारण है „ प्राप्ते भावार्थे वचनं विशेषणपरं युक्तम्” भावरूप अर्थ के प्राप्त होने पर वचन विशेषण में तत्पर हो जाता है, और ऋतुकाल में भार्यागमन इच्छा ही से प्राप्त है अतः ‘यदि जावे तो ऋतुकाल ही में, ऐसी वचन व्यक्ति होती है, तात्पर्य यह है कि ‘लिङ्, ‘लोट्, ‘तव्यत्, ‘यत्’ ‘अनीयर्’ इत्यादि विधि बोधक जो प्रत्यय हैं इन का साक्षात् सम्बन्ध जिस “धातु” से होता है. उस की बोधक्रिया जहां लोक से वा वचनान्तर से सिद्ध होती है. वहां उस क्रिया में „करो” इस अर्थ वाले प्रत्यय का सम्बन्ध आवश्यक नहीं किन्तु उस क्रिया के विशेषण वाचक पद से उस प्रत्यय का सम्बन्ध होता है. यह मीमांसक के नेत्र से देखने की बात है. वैयाकरण आदिकों को

इस में आश्चर्य के अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होसकता। जैसे कि प्रकृति में "गच्छेत्" इस में "लिङ्" का सम्बन्ध "गम्" धातु से है, और "गम्" धातु गमन को बोधन करता है. ऋतुकालगमन पुरुष की इच्छा ही से प्राप्त है तो "गम्" धातु का अर्थ "गमन" और लिङ् का अर्थ "करो" इन दोनों को जोड़ने से जो 'गमन करो' यह समुदित विधिरूप (भावार्थ) अर्थ होता है अनावश्यक है. इस लिये "गमन" का विशेषण जो 'ऋतुकाल' है उसी में सम्बन्ध हुआ. "यदिगच्छेहृतावेव" "जो जावें तो ऋतुकाल ही में"। 'नत्वनृतुकाले "न कि ऋतु भिन्नकाल में" यह दूसरा फलितार्थ बोधक वाक्य है। इस रीति से परिसंख्या ही हुई नियम न हुआ। और तीसरा इस के नियमत्व में यह भी प्रतिबन्धक है कि—"सुस्थ इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान्"

(अ० १ श्लो० ८० याज्ञ०स्मृ०) चन्द्रमा को लग्न से एकादश आदि शुभ स्थानों में स्थित होने पर एक रात्रि में एक वार गमन से लक्षणवान् पुत्र को पुरुष उत्पन्न करे, पुत्रोत्पत्ति करने के नियम विधि से ही ऋतुकाल में गमन नित्य प्राप्त ही है, इस लिये 'ऋतुकाल में गमन करे ही' ऐसा नियम व्यर्थ है, और चतुर्थ कारण नियम मानने में अदृष्ट की कल्पना करनी होगी, दृष्टफल के लिये शास्त्र को नियम करने की कोई आवश्यकता नहीं है, और संख्या में अदृष्ट की कल्पना नहीं करनी पड़ती यह लाघव है। और पांचवां यह कारण है कि 'ऋतौ गन्तव्यमेव' 'ऋतुकाल में गमन करे ही, ऐसा नियम होने पर जो पुरुष स्त्री के समीप नहीं हैं किन्तु-देशान्तर में गये हुवे हैं और जो पुरुष रोग आदि से असमर्थ हो रहे हैं, और जिन पुरुषों को ऋतुकाल में इच्छा उत्पन्न न होवे, ऐसे अशक्त पुरुषों के लिये अशक्य (जो नहीं किया जासके) अर्थ का उपदेश होगा, ऐसी कोई वेद की आज्ञा व्यर्थ नहीं है जो अधिकारी के करने में न आ सके अतः ऐसा नियम होना अनुचित है। और छठा दोष यह है कि—नियम में विधि और अनुवाद दोनों का विरोध होगा क्यों कि नियम में एक शब्द एक वार उच्चारण किया गया उस ही अर्थ को पक्ष में अनुवाद करता है और पक्ष में विधान करता है। जैसे मिताक्षराकार के मतानुसार समदेश में पुरुष की यजन करने की इच्छा होने पर "समे यजेत" सम देश में यजन करे, यह वाक्य इस उक्त अर्थ का अनुवाद करता है, और जब विषम देश में यजन करने की इच्छा होती है, तब अ-

प्राप्त होने से उसही अर्थको विधान करता है (भाव यह है कि जो अपूर्व वाक्य होता है वह अनुवाद नहीं हो सक्ता क्यों कि वह लोक से अप्रसिद्ध अर्थ को कहता है और अनुवाद सिद्ध अर्थ को कहता है, यह ही विरोध है। और नियम वाक्य में विधिभाव और अनुवाद भाव दोनों होते हैं। अतः इन पूर्वोक्त दोषों के कारण, ऋतावेव गच्छेन्नाऽन्यत्र "यदि जावे तो ऋतु काल ही में जावे न कि ऋतु भिन्न काल में, ऐसी परिसंख्या ही ठीक है। यह परिसंख्या वादी आचार्यों का मत दिखाया गया।

अब इस मत पर जो मिताक्षराकार ने विचार किया है वह दिखलाया जाता है।

मिताक्षरा कार कहते हैं कि यह मत "भारुचि" और "विश्वरूप" आदि आचार्य नहीं स्वीकार करते किन्तु इस वाक्य "ऋतौ भार्या मुपेयात्" को नियम ही मानते हैं क्योंकि एक पक्ष में अप्राप्त के विधान का सम्भव है और गमन न करने में दोष भी शास्त्र में कहा है।-

ऋतुस्नातांतुयोभार्यां सन्निधौनोपगच्छति।
घोरायांभ्रूणहत्यायां युज्यतेनात्रसंशयः ॥ इति।

ऋतु में स्नान कर लेने के अनन्तर जो पुरुष भार्य्या के समीप में नहीं जाता वह घोर गर्भ हत्या में नियुक्त होता है इस में कोई सन्देह नहीं है। और जो पहले नियम में विधि और अनुवाद का विरोध दिखाया है वह दोष नहीं है, क्योंकि यह अनुवाद नहीं है किन्तु विध्यर्थ है। विधि और अनुवाद का विरोध वहां होता है, जहां उस ही वस्तु को किसी उपाय के विधान के लिये अवधि रूप होने से अनुवादमात्र हो, और वह ही किसी और फल के लिये विधान किया जावे। जैसे ॥

(जै० मी० अ० १ पा० ४ अधि० ६) वाजपेयाधिकरण के पूर्व पक्ष में "वाजपेयेन स्वाराज्यकामोयजेत" वाजपेय द्रव्य से स्वर्ग के राज्य की इच्छा वाला मनुष्य याग करे यहां वाजपेय रूप गुण के विधान के लिये अवधि रूप होने से याग का अनुवाद है और वह ही स्वर्ग के राज्य रूप फल के लिये विधान किया है। शेष आगे

मुं० जगन्नाथदास मुरादाबाद का लेख—

ऐसा कलियुग का दौर आया कि सत् मिटाया असत् बढ़ाया। बढ़ाया धर्म और कर्म सारा अधर्म वृत्ति में मन लगाया ॥ १ ॥ जो गाय वंध्या है उस का वध भी लिखा है सत्यार्थ पहिले में ही। दशा यही तो है बैल आदि की रु-धिर ये पशुओं का हा बहाया ॥ २ ॥ स० १८७५ पृ० ३०३

सत्यार्थ प्रकाश सन् १८८४ के लेख

न कोई ईश्वर का है विजाती ये गाई वेताल क्या प्रणाली। बने हो भं-डार के तुम घराती तो उन से फिर द्वेष क्यों बढ़ाया ॥ ३ ॥ पृष्ठ २४५ जो ग्रंथ भाषा के सब हैं मिथ्या तो होवे सत्यार्थ कैसे सच्चा। ज़रा तो मन में तू अप-ने शरमा तेरे वचन से तुझे हराया ॥ ४ ॥ पृ० ८१५ लिखी है वर्णों की जो व्यव-स्था कपोल कल्पित है तेरी व्याख्या। मनु का आशय नहीं है ऐसा कपट से तूने जगत भ्रमाया ॥ ५ ॥ पृ० ८८। जो बदला संतानों का लिखा है कहो तो कैसी ये असलता है ॥ किसी ने स्वीकार भी किया है कि ढोल फूटा यूंही बजाया ॥ ६ ॥ पृ० ८९। है सब अनुचितों से पास्थ नारी तो फिर न वर्जित रही चमा-री। ये कैसी कलियुग की आई वारी कि धर्म और कर्म सब मिटाया ॥ ७ ॥ पृ० ९७। किया है कैसा नियोग जारी कि भोगें दश मर्द एक नारी। है स्वा-मी जी की ये होशियारी कलंक वेदों के शिर लगाया ॥ ८ ॥ पृ० ११८। किसी का पति जो विदेश जाये नियोग कर के वह सुत जनाये। ये धर्म कैसा गुरु सिखाये कहो तो शिष्यों के मन भी भाया ॥९॥ पृ० ११९। पति हो जिसका कि दुःख दाई उसे नियोग विधि विहित बताई। ये ही है स्वामी जी की बड़ाई कि दुःख अबलाओं का मिटाया ॥ १० ॥ पृ० ११९ पति से पहिला हो गर्भ जि-स को नियोग फिर भी विहित है विस को। कहूं समंजस में कैसे इस को म-हा असंभव वचन सुनाया ॥११॥ पृ० १२०। गुरू की फोटो को शिर झुकावें शि-वादि मूर्त्ति वृथा बतावें। ज़रा तो लज्जा से मुंह छुपावें कि मन को हठ्ठी में स्थिर कराया ॥१२॥ पृ० १८८। हुए हैं सृष्टि के पूर्व ब्रह्मा स्पष्ट वेदों में है ये लिक्खा। तू अग्नि वायु की गावे गाथा ये फल अविद्या ने क्या दिखाया ॥१३॥ पृ० २०२। हैं नाम ऋषियों के ब्राह्मणों में इसी से उन को न वेद जानें। तो संहिताओं को भी न माने कि उन में ऋषिगण का नाम आया ॥ १४ ॥ पृ० २०५। भ्रमता है पृथ्वी ये वेद गावे विरुद्ध उस के तू क्यों बतावे। अनृत से कोई भी जय न

पावै कहीं न फूटे ने यश को पाया ॥१५॥ पृ० २२८ । कहै वह मुक्ति से लौ
आता न व्यास के भी वचन को माना । विरुद्ध वेदों के हैं ये गाना लिखे क
अपने भी तो मिटाया ॥ १६ ॥ पृ० २४० । २३९ लिखा है मुक्ति को जेलखान
समान फांसी के उस को माना । समझलो मन में जो होवे दाना ये कैसा वेतु
ल गीत गाया ॥ १७ ॥ पृ० २४१ । लिखे हैं सौ वर्ष के भी जो दिन ज़रा समझ
कर उन्हें तुई गिन । यों बुद्धि स्वामी जी की परिच्छिन्न कि धोका लाखों क
वां भी खाया ॥ १८ ॥ पृ० २४२। कहै वह शंकर की मृत्यु जैसे लिखी नहीं दि
ग्विजय में तैसे । किया है भाषण अनृत ये कैसे कि उन को जैनोंने विष खि
लाया ॥ १९ ॥ पृ० २०७। जो पाप भोगे बिना न छूटै तो कैसे बंधन किसी क
रटे । वह धर्म शिष्यों का हाय लूटै ये वेद विपरीत मत चलाया ॥ २०
पृ० ३२२ । ३१८। जो भागवत की कथा सुनाओ लिखी तो हम को वहां दिखा
ओ । न ढोल फूटे वृथा बजाओ गुरू ने गाया अनृत सो गाया ॥ २१ ॥ प्रह्लाद
अक्रूर की कहानी है उस के अज्ञान की निशानी । कहो जिसे तुम महर्षि
ज्ञानी मृषा है सर्वत्र उस की गाया ॥२२॥ पृ० ३३३ । ३३४ । जो शूद्र कानश्रु-
ति को गाये वह कैसे विद्वान् जन कहाये। कि व्यास क्षत्रिय उसे बताये ब्रह्म सूत्रों
से भेद पाया ॥ २३ ॥ पृ० ३३६ । गुरू की आज्ञा को तुम जो पालो तो दोष
अपने प्रथम निकालो । तभी किसी मत पै दृष्टि डालो ये न्याय उस ने तुम्हें
बताया ॥ २४ ॥ पृ० ३९६ । बताये उपवास सब के मिथ्या लिखी है शतपथ से
आप आज्ञा । कहो तो विद्वान् था वह कैसा विरोध लिखने में जिस को आ
या ॥२५। पृ० ४३३ । संस्कार विधि पहिली पृ० ५६ । है जीव परतंत्र वेद मत
में लिखा है मंत्र और उपनिषत् में । यही है भारत में भागवत में स्वतन्त्र कैसे
उन्हें बताया ॥ २६ ॥ पृ० ५९० जो लोक स्वर्ग और नरक न माने भला वह
क्या वेद शास्त्र जाने । लगे हैं कैसा ग़ज़ब ये ढाने कि लोक पर लोक सब
उड़ाया ॥२७॥ पृ० ५९० । कुछ अंशवेदों का सत्य जानें न और ग्रन्थों के वाक्य
मानें । वृथा ही फिर सब से युद्धठानें लिखा गुरु का भी उन में पाया ॥२८॥

संस्कार विधि १९३३ के लेख ॥

जो मांस संयुक्त भात खाये वह वीर वेदज्ञ पुत्र पाये । कोई समाजी हमें
बताये किसी ने इस को भी आज़माया ॥ २९ ॥ पृ० ११ । उदर में सुत होवे
जब कि माके तु वस्त्र बालक को तब पिन्हा के । खिलावे जंगल में बाप जा

वचन असम्भव ये क्या सुनाया ॥ ३० ॥ पृ० ४१ । जो घी मृतक के समान
ओ तो अपने मुरदे को तुम जलाओ । नहीं तो जंगल में छोड़ आओ ये
र्म अनुचित तुम्हें सिखाया ॥ ३१ ॥ पृ० १४१ । मृतक की भस्म और अस्थि भाई
फूने खेतों में जो गिराई ॥ वृथा तुम्हारी हंसी कराई लिखा न वेदों में ऐसा
या ॥ ३२ ॥ पृ० १५०

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ॥

जो सृष्टिगत शेष वर्ष गणना लिखी गुरु जीने ध्यान करना । गणित को
न को ज़रा समझना करोर दोसै अधिक उड़ाया ॥ ३३ ॥ पृ० २३ । २४ । जो
द ईश्वर के हैं बनाये तो क्यों अनादि उन्हें बताये । छिपे है अज्ञान कब
पाये विरोध तेरे कथन में आया ॥ ३४ ॥ देखो वज्र प्रहार पृ० ३२ ॥

दयानन्द जीवन चरित्र दलपत राय अगरांवी कृत से ॥

जो उस ने मुरदे को चीरा भाई घृणा भी कुछ उस के मन में आई ।
हो तो क्या इस से पदवी पाई जो कर्म अद्भुत ये कर दिखाया ॥३५॥ पृ० ५६
ो रीछ खाने को उन को आया तुरित अचेत न उन्हें बनाया । जो सोंटा
ामी जी ने उठाया तो उलटे पाओं उसे भगाया ॥ ३६ ॥ पृ० ६१ ।

दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्यसे ॥

तुम्हारा ईश्वर है दुःख भोगी कभी वह होता हो स्यात् रोगी । कस
स को दुःखों से मुक्ति होगी गुरू ने ये भी तुम्हें बताया ॥ ३७ ॥ पृ० ४३५ ।
ुदा की और लिंग की भी शुद्धि करे गुरू क्या कहां है बुद्धि । प्रकट है स्वामी
ी की अशुद्धि ये हास्य वेदों का भी उड़ाया ॥३८॥ पृ० ५०० । जो चाहे शूरों से
अपनी रक्षा तुम्हारी रक्षा वह क्या करेगा । कहो तो ईश्वर को भय है किस
ा ये दोष उस को वृथा लगाया ॥३९॥ पृ० ६३५ । वह नीलगाओं के वध की
आज्ञा यज्ञ की व्याख्या में जो न लिखता । कहो तो कोई बिगाड़ क्या था ये
ाप भारी वृथा कमाया ॥४०॥ पृ० १३६३ । जो वृक्ष आम्रादि तुम कटाओ गुरू
ी आज्ञा से वज्र उठाओ । कहो तो क्या फल जगत् में पाओ जो बैठो जं-
ल में होन छाया ॥४१॥ पृ० १६१८ सुअर की उपमा जो नृप को दी है किसी
े मित्रो कभी सुनी है । ये उस के अज्ञान की दवनी है जो मुंह में आयासो
कह सुनाया ॥४२॥ पृ० १६८० । कहो तो बकरे का दूध और घी किसी मनुज ने
ुना कहीं भी । ये स्वामी जी की थी तीव्र बुद्धि यज्ञ की व्याख्या में जो क-

पाया ॥४३॥ अ० २५ पृ० ७४ फलों को बढ़ के न कोई खाये यह तुमिकारक दुःखे बताये । जो हास्य वेदों का यूं उड़ाये महर्षि कलि में वही कहाया ॥४४॥ अ० २१ पृ० ८९ । लिखा वृषभ से है भोग करना गुरु की आज्ञा पै ध्यान धरना । जरा तो ईश्वर से मन में डरना ये कैसा अज्ञान उर में छाया ॥४५॥ अ० २९ पृ० ११३ । जो चेले स्वामी जी के कहावें वह पालें उसलू गधे खरावें । लिखा गुरु जी का हम दिखावें सबक ये कैसा तुम्हें पढ़ाया ॥४६ ॥ अ० २४ पृ० ३३ अ० ९ पृ० ८६२ । जो वृद्धि सांपों की तुम मनाओ बताओ लाभ उन से क्या उठाओ । जगत् का विध्वंस क्यों कराओ अनर्थ कैसा ये मन में आया ॥ ४७ ॥ अ० ३० पृ० ७६३ । लिखा है वेदों का भाष्य ऐसा प्रकट है जिस से कि उन की निन्दा । किया है उस ने अनर्थ जैसा नमूना उस का ये कुछ दिखाया ॥४८ तुम्हारे मत में है वेद हानि करे जो इस पर विचार ज्ञानी । उसी को समझें बुद्धिमानी ये मूल सिद्धान्त कह सुनाया ॥४९ ॥ देखो दयानन्द से मूल की हानि— रचा है सृष्टि को जिस ने सारी करेगा रक्षा वही हमारी । जपे हैं जिस को अज और पुरारी उसी को हम ने भी शिर झुकाया ॥५०॥

जन्दा० मु०खा०

भजन ॥ १ ॥

दोहा कलिकाल के बीच में समय हुआ विकराल ।
धर्म सभी को तज दिया हो गया बुरा हवाल ॥

शेर कालों ऊपर काल पड़ते वारिस होना बंद है । सज्जन जन तो दुःख पावें दुष्ट तो आनद है मित्रो नाना पंथ होते जा रहे इस देश में । होने थे जो होगये थे प्रबल तो दयानंद है । नाम धरें आर्या ये रोकने का फन्द है । हा वेद २ पुकारते ये धर्म का नहिं गंध है । मुसलमानों तक मिलावें आर्या फिर भी रह गये । धिक्कार उस इनसान को जो मिलगया मतिमंद है ॥

टेक—इस कलिकाल विकराल में सब दुःखी हुये नरनारी । धर्म कर्म तो सबने छोड़ा । द्रव्य कमाने में मन जोड़ा । क्या अन्याय किया है थोड़ा । फंस गये फूंटे जाल में । जब मिली नौकरी भारी ॥ सब दुःखी हुये नर नारी ॥ १ ॥ जैसा जिसके दिल में आया वो ही । उस को धर्म बताया । दो पैसे देके कहला- या अभी देखलो हाल में नौकर हो रहे पुजारी । सब दुखी हुये नरनारी ॥२॥ हाय नौकरी जुल्म कराया कैसा यह उपदेश चलाया । पति रोग को जान कु-

लाया वही करे फिर ख्यालमें । कह और खसम कर प्यारी । सब दुःखी हुये ॥३॥ एक नारिके पति गिनाये । ग्यारह तक फिर ऋषि कहाये । दयानन्दने यों सम-भाये । चलो वेद की चालमें । कह सिंहराम हितकारी ॥ सब दुखी० ॥ ४ ॥

भजन ॥ २ ॥

दादरा टेक-स्वामी जी ने जगत् भरमाया । जिस औरत का पति रोगी होवे । उस को तो दूजा खसम करवाया ॥ स्वामी जी ने० ॥ १ ॥ ऋग्वेद का कुछ मंत्र लिखाहै । झूंठा ही उस का अर्थ छपवाया । स्वामी जी ने जगत्० ॥ २ ॥ औरत से कहताहै उसका मालिक । हा कैसा झूंठा हि जाल फैलाया ॥ स्वा-मी जी० ।३॥ उसमें तो भय्या का कहना वहम से । झूंठा ही उल्टा क्यों झ-गड़ा उठाया । स्वामी जी० ॥ ४ ॥ कह सिंहराम सदा सच बोलो । झूंठों में फंस के क्यों जन्म गवांया ॥ स्वामी जी ने० ॥ ५ ॥

भजन ॥ ३ ॥

आधा टेक-रहना हुशियार दयानन्दलीला से । औरों के धर्म छुड़ाये ग्यारह तक पति बताये । फैलाया है व्यभिचार ॥ दयानन्द० ॥ १ ॥ विधवाको व्याह रचाया वेदोंको दोष लगाया । चढ़ाया झूंठाभार ॥ दयानन्दलीला०॥२॥ जो मनु ऋषीने गाया । वोह सारा अर्थ मिटाया । करलो यहां विचार । द-यानन्द० ॥३॥ यह सिंहराम की बानी । जो करे धर्म की हानी । होयगी उस की हार ॥ रहना हुशियार दयानन्द लीला से ॥ ४ ॥

भजन ॥ ४ ॥

आधा टेक-क्यों छुड़वाते स्त्री नारि का धरम । धन लेन पति कहीं जा-वें । नहीं तीन वर्ष तक आवें । छोड़ के लाज शरम ॥ क्यों छुड़वाते०॥१॥ फिर और पति को करले । बच्चे को पेटमें धरले । सिखादिया कैसा करम ॥ क्यों छु-ड़वाते०॥२॥ जब पहला पति आजावे । वोह करा हुआ छुट जावे । दयानन्द कैसा भरम ॥ क्यों छुड़वाते० ॥ ३ ॥ कह सिंहराम समझा के । लज्जा को दूर कराके । दुखाते मेरा मरम ॥ क्यों छुड़वाते० ॥ ४ ॥

भजन ॥ ५ ॥

रंगत आधी टेक-यह मतलब था भाइयो सो दिया छुड़ाय, परदेश पति को जावे । अन वस्तर घर घर जावे । रही नारी जो खाय ॥ यह मतलब०॥१॥

जो विद्या पढ़ने जावे नहीं छठे वर्ष तक आवे पति के पास ही जाय ॥ यह मतलब०॥२॥ जो चाहता द्रव्य कमाना । नहीं तीन वर्ष हो आना । पति के धोरे जाय ॥ यह मतलब० ॥३॥ यों सिंहराम समझावें । स्वामी की पोल खुलावें । नारायण शर्म गाय ॥ यह मतलब था भाइयो जो दिया छुपाय ॥ ४ ॥

भजन ॥ ६ ॥

आधा टेक–ऋषी मनु बतलाते दुनियों का कानून । सब ब्राह्मण वणियें क्षत्री । इन की जो विधवा पुत्री । करें नहीं ब्याह का ध्यान ॥ ऋषि० ॥१॥ फल फूल कंदको खाके । देही को चाहे सुखाके । करले व्रत विधान ॥ ऋषी० ॥२॥ दूजेका नाम नहिं लेना । येही दिलमें करलेना । लिखी ऐसी भगवान्॥ ऋषी०॥३॥ थोड़ासा लिखा सुनाया । यह सिंहराम ने गाया । ईसका व्याख्यान ॥ऋषी०॥४॥

भजन ॥ ७ ॥

दोहा—भूत शख्स पारे लिखा उसका करो विचार ।
कौन शख्स हूं जीमते पत्तल दही पसार ॥

टेक–जो नहीं आय के खावते हैं कौन शख्स कहो भाई–पूरब में तो इन्द्र बुलाया । दक्षिण में यम नाम सुनाया–पश्चिम में ले वरुण बिठाया–क्यों नहीं भोग लगावते । फिर दीजो तुम समझाई ॥ है कौन शख्स० ॥ १ ॥ उत्तर में फिर सोम बताये । दरवज्जे में मरुत जिमावें । ओखल मूशल रोटी खावें– फिर भी नहीं पछतावते तुम देखो कैसे गाई ॥ हैं कौन श० ॥ २ ॥ विश्वे देवादि ये जिमाई । भद्रकाली और बुलाई । पैंतिसका जो पृष्ठ खुलाई । तुलसीराम छपावते । नित्य कर्म विधि के माहीं ॥ है कौन० ॥३॥ इन देवों के भोग लगावें । कहिं समाजी कैसे खावें । इन्द्रादिक सब पारे आवें । सिंहराम यों गावते । देवेंगे खूब दिखाई ॥ कौन शख्स० जो नहीं० ॥ ४ ॥

भजन ॥ ८

दोहा=तुलसीराम सुन लीजिये यम इन्दर थे कौन ।
विश्वे देवा वरुण भी मरुत वेद में कौन ॥

टेक–ये लिखे देवता प्यारे । वेदों का लेख सुनाया । यजुर्वेद आपे मंगवाना चौदह को अध्याय दिखाना । मंत्र बीस अर्थ समझाना । लिख दीन्हे हैं सारे । वहां जुदा जुदा बतलाया । वेदों का० ॥१॥ यजुर्वेद अध्याय बीस में । मंत्र देख लो वा छत्तिस में । इंद्र देवता लिक्खा तिसमें । और लिखे हैं न्यारे । सब देखों

पता लगाया वेदों। का० ॥२॥ वेद अथर्वण काण्ड अठारा। मंत्र पढ़ो चौदस को मारा धर्मराज अरु वरुण उचारा छोड़ धर्म क्यों हारे। फिर कगे अहुत ये आया वेदों का० ॥३॥ उसी वेद में काण्ड अठारा। धर्म राज का अर्चन सारा। तेरह और हुचत्तर प्यारा मन्त्रों में लिख हारे यह सिंहराम ने गाया वेदों का० ॥ ४ ॥

ह० श्री भारतधर्ममहामण्डल
सनातन धर्मोपदेशक
पं० सिंहराम शर्म्मणः

श्री वल्लभो विजयतेतराम् ॥

नागोमेऽस्तिवधानधामनिनिजप्राणप्रियायाहृतं,
धन्योऽहंखलुमेहयायदिमनाक्पश्येरलंमेहयैः ॥
नान्यस्या परमुच्चकैरथवरस्तेयंरथोमास्तुमे
युष्मानित्थमनुत्तरोऽवतुहरिःसम्मानयन्मानिनीम् ॥१॥

आर्या

अविदितगुणाऽपिसत्कविभणितिः कर्णेषुवमतिमधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलापिहरति दृशंमालतीमाला ॥ २ ॥
अतिमलिनेकर्तव्येभवतिखलानामतीवनिपुणाधीः ।
तिमिरेहिकौशिकानांरूपंप्रतिपद्यतेदृष्टिः ॥ ६ ॥

सनातनी और दयानन्दी ॥

(दयानन्दी)-महाशय ! श्राद्ध क्या चीज़ है यह बात आप को अच्छी तरह से विदित होगी।

(सनातनी)-आप व्याकरण पढ़े होंगे तो जानते होंगे कि पितरों के उद्देश से जो श्रद्धा पूर्वक वैदिक कर्म किया जाता है उस को श्राद्ध कहते हैं। जैसे कि आप " रात्रिंदिव " रुपया जोड़ कर जिह्वा और उपस्थ का लालन करना इस में श्रद्धा रख कर अपने को कृतार्थ मानते हो ऐसी माफिक हम

देवपितृकार्य को श्रद्धा पूर्वक करते हैं। आप अपने वेद में से बतलाइये कि देव पितृ पूजन नहीं करना चाहिये तो हम आप के शिष्य होकर शिष्टोपदेष का शासन करते हुए धार्मिकों की निन्दा कर आपके माफिक वैदिक बनजावें और आपको प्रिय होजावें।

" गुरुवेदवाक्येषु आस्तिक्यावलम्बनाबुद्धिःश्रद्धा "

इसको श्रद्धा कहते हैं हमारे आम्नाय में तो अक्षर २ प्रति श्राद्धका माहात्म्य और वर्णन है तथाहि आपस्तम्ब शिक्षायां–

" मातृदेवोभव ,, पितृदेवोभव " अतिथिदेवोभव ,, "आचार्यदेवोभव,, "यान्यनवद्यानिकार्याणि,, तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि" "प्रजातन्तुं माव्यवच्छेत्सीः" इषेत्वेति मंत्रे" इषे देवानामन्नाय" ऊर्जे पितृणामन्नाय" हेशाखे त्वा त्वां छिनद्मि"

इत्यादि (शतशः सहस्रशः) श्रुतियों में श्रद्धा पूर्वक देवपितृपूजन लिखा है लेकिन आप इस शिक्षा को वेद नहीं मानेंगे जो–"मातृघ्नोभव" पितृघ्नो भव" शिष्टद्वेषी भव" तपस्विद्वेषोभव" किंपचानोभव" कदर्यो भव" "ऐसे शिक्षा वाक्य होते तो आपको शिरोधार्य होते क्याकहें हमारे पुराण बड़े गपोड़े मारते हैं जोकि" नाजारजः पितृद्वेषी" "यः पुमान्पितरं द्वेष्टितं विद्यादन्यरेतसम्" " यः पुमान् श्रीहरिं द्वेष्टि तं विद्यादन्यरेतसम् " अकर्तोवचरितं पितुः जीवितो वाक्यकरणात् । [illegible]याहे भूरिभोजनात्" गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता" मातुलश्चदार एवमः" महाशयजी ये वाक्य तो आप लोगों के वेद के माफिक सिद्धान्त नहीं हैं इसलिये इनको आप (गप्पं) कहेंगे कुछ काम श्रद्धा से किये जाते हैं।

श्रद्धाविरहितं कर्म तत्तामसमुदाहृतम् ॥

यह गीतावाक्य है" तथा च श्रुतिः"

श्रद्धयादेयमश्रद्धया देयं ह्रिया देयं भिया देयं संविदा देयं ये केचास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम् ॥

परन्तु मुशकिल तो यह है कि इन में देना लिखा है सो आप लोगों को स्वप्न में भी असह्य है इस कारण देवताओं को तथा पितरों को न मानना श्राद्ध आदि परलोक के मिटाने के वास्ते आप वैदिक शिरोमणि बन बैठे हैं बहुत ठीक है जिसमें अपना मतलब निकले वही वेद है। मतलब के वाक्यों को वेद मानलेना औरों को गप्प कहना यह आप लोगों में बड़ी चातुरी है हम को नहीं मालूम कि ब्रह्मदेव ने कितने वेद के मंत्रों को रजिस्टर कर खुद हस्ताक्षर कर वेद की पुस्तक आपको देदी है जिस की बदौलत आप मूछों पर ताव देकर हम सब विद्वानों को धमकाते हो।

धार्मिक भोले भाले श्रद्धालुओं को लोभ दिलाकर देवपितृ कार्यों में अविश्वास कराते हो " अहो कलिमाहात्म्यम्" सपिण्डी के दिन द्वादशाह श्राद्ध में " अतःपरं प्रेत शब्दं नोच्चारयेत् " इस प्रकार लिखा है पहिले इसके एकादश दिनतक जो "और्ध्व दैहिक" कृत्य कराया जाता है उसमें " प्रेतत्व निवृत्या उत्तमलोक प्राप्त्यर्थं " ऐसा संकल्प किया जाता है इन शास्त्रों से आप बेखबर हैं क्योंकि मणिमय मन्दिर में पिपीलिका छिद्रान्वेषण करती है दिव्य शरीर में मक्खी व्रण देखती है " परदाराभिमर्शनम् " यह श्रीमद्भागवत वाक्य आपको मन्तव्य हो जायगा परन्तु उसी मुखसे श्री शुकाचार्य जी ने "आत्मारामोऽप्यरीरमत्" "यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः" मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः " यह सब भागवत (गप्प) मानोगे क्या मतलबी वैदिक हो इतना सुन दयानन्दी जी की मुखश्री मलिन होगई चुपचाप चलदिये इत्यलम् पल्लवितेन ॥

भवतां संस्कृतपाठशालाध्यापकौ

केशवशास्त्रिपण्डितमुरलीधर शर्माणौ

पो० सागर मध्यप्रदेश

नकल चिट्ठी की ॥

श्री रामो जयति

श्री मन्महाशय निम्न लिखित प्रश्न सेवा में भेजे जाते हैं कृपा कर कृतार्थ कीजिये गा सुना है कि विद्वान् लोग आप के जलसे में पधारे हैं ऐसा समय बार बार नहीं आता आशा है कि प्रार्थना स्वीकार होगी ॥

प्रश्न (१) जब स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ब्राह्मणादि तीन वर्णों के लिये विधवा विवाह वा पुनर्विवाह का निषेध करते हैं तो आर्य्य समाजियों में शोर क्यों है ॥

(२) जिस ने कन्या का संकल्प लिया उस के मरण पश्चात् पुनः संकल्प करने का किस को अधिकार है ॥

(३) बिना सगुणता के ईश्वर दयालुता प्रकट कर सकता है या नहीं ॥

(४) श्वेत केश युक्त सोमरस पीने वाला ईश्वर यज्ञ में आसक्ता है वा नहीं।

(५) स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों को सर्वप्रकार सत्य मानते हो वा नहीं॥

(६) तरुणता बालापन से भी पहिले हो सकती है वा नहीं ॥

(७) बिना वरण परीक्षा जात कर्म वा उपनयन हो सकते हैं वा नहीं ।

(८) सत्यासत्य ग्रन्थ माननीय हैं या नहीं ॥

(९) वेदों की कितनी २ शाखा हैं आप को कितनी मन्तव्य हैं ॥

(१०) सर्वशक्तिमान् में साकार होने की शक्ति है वा नहीं ॥

(११) तीन हज़ार तीन सौ ब्यांलीस ३३४२ सत्वों की तफसील आप के पास है नहीं तो नाम ही बतला दीजिये ॥

(१२) वेदों से जाने हुए ईश्वर को युद्ध में अपनी रक्षार्थ योधा बुलावे तो उन का आना सम्भव है वा नहीं ॥

(१३) मनुष्य जो मानुषीय मांस खाने लगे तो क्या संसार की क्षति नहीं ।

(१४) आर्य्यावर्त्त में जो और जगह का रहने वाला आवसे तो क्या आर्य्य हो सकता है ॥

(१५) विदेशी राजा प्रजा का पुत्रवत् पालन करने से भी क्या शुभ कारी नहीं

(१६) अङ्गहीन क्या प्रायश्चित्त से शुद्ध हो सकता है ॥

(१७) पीठ से बोझ उठाने वाले वैश्य क्या (उष्ट्र) ऊंट के समान हैं ।

(१८) हर विद्वान् को जामात्र तुल्य सत्कार देते हो ॥

(१९) उत्तम सुखदा स्त्री मातृ समान हो सकती है वा नहीं ॥

(२०) ईश्वर क्या जीववत् भूल कर सक्ता है ॥

(२१) विविधानिच रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् ॥ क्या यह मनुका वाक्य है?)

ता० १३-५ १९ ई० को ॥

आप का उत्तर अभिलाषी मुरारी लाल वैश्य

मेम्बर श्री भक्ति प्रदायिनी सभा

सदर बाजार मेरठ

ता० १५ को प्रातः काल ८ बजे शंका समाधान के समय मुझको बुलाया था मैं वहां गया तो शंका समाधान आर्य लोगों की होरही थी पश्चात् मेरे प्रश्न खोले गये और प्रश्न पहिला स्वामी तुलसीराम जीने पढ़ा और यह उत्तर दिया कि स्वामी दयानन्द जी ने जो कुछ लिखा है धर्म के अनुकूल है आर्यसमाज विधवा विवाह कराना नहीं चाहता किन्तु सोशलरिफार्म विधवाविवाह प्रचारक कमेटियों के लोग जो आर्यसमाज में शामिल हैं वोही इसका शोर मचाते हैं उपदेशक लोग धर्म उपदेश करते हैं हमको चाहिये कि हम और तुम ऐसी बातों को रोकें और आपके कुल प्रश्नों का उत्तर तहरीर शुदा दिया जावेगा जैसे कि आपके प्रश्न तहरीर शुदा आये हैं मैं ने करीबन दस बजे के उनसे इजाजत ली और धन्यवाद अदाकर ये कहा विशेष धन्यवाद उसवक्त अदा करूंगा जब कुल प्रश्नोत्तर मेरे पास आजावेंगे बाद मैं अपने स्थान को चला आया ॥

द: मुरारीलाल वैश्य

आ० सं० अं० १२ पृ० ५७० से आगे शेष

उदाहरणार्थ जो मनुजी ने अ० द्वितीय में ११९-१२७ तक अभिवादन प्रणालीका चातुर्वर्ण्य में मर्याद बांधा वही पाणिनि आचार्य के प्रत्यभिवादेऽशूद्रे" पा० ८। २। ८३ सूत्रसे भी सिद्ध है। तब शर्मा जी क्या इन ग्रन्थों का प्रमाण नहीं मानते? क्या वे अपने माने हुए तीन वेदों से नमस्ते प्रचार को सिद्ध कर सक्ते हैं? क्या इसके प्रचार की आज्ञा वेद में लिखी है क्या आर्ष ग्रथों में अपने से छोटों और बराबर वालों के लिये-भी "नमस्ते" शब्द दिखा सक्ते हैं यदि नहीं दिखा सके तो वृथा वितंडावाद का आश्रय न लेकर आर्षग्रन्थानुकूल सत्यका ग्रहण और प्रचार क्यों नहीं करते? युष्मद् के एकवचन का रूप नमः शब्दसे साथ लोक व्यवहार में सर्वथा अशुद्ध और निन्द्यही सिद्ध होते आयाहै और पा० ३। १। १९ के अनुसार पूजार्थ वाची नमः शब्दका प्रयोग अपूज्य अपने से छोटे तथा शूद्रादि के लिये पाप जनक नहीं तो क्या है? अब रहा आधुनिक रामर सीताराम जैगोपाल आदि शब्दों से अभिवादन करने की प्रथा जो यत्र तत्र प्रचलित है सो वास्तव में प्रथम तो बराबर वालों तथा सजातीय शूद्रों में ही प्रायः इन शब्दों का प्रयोग

दीख पड़ता है जिससे प्राचीन अभिवादन करने की रीतिका लोप होना नहीं कहा जा सक्ता। न इसका प्रचार द्विजों (ब्राह्मण० क्षत्रिय० वैश्य०) के परस्पर व्यवहार में कहीं देखा सुना जाता। दूसरे समय के फेरसे भिन्न २ उद्देशों के समागम से सम्प्रति शास्त्रोक्त अभिवादन प्रणाली का रूपान्तर ऐसा होगया है कि इन शब्दों को ईश्वरार्थ परक मानकर तथा मंगल सूचक जानकर कतिपय एकजातीय तथा भक्ति मार्ग के अनुसरण करने के वास्ते सनातनियों में भी प्रणामादि के बदले ईश्वर स्मरण सूचक शब्दों का ही व्यवहार होता है तो भी इन शब्दों से किसी की मान हानि न होकर मंगलानुशासनरूप उन लोगों का कल्याण ही होता है। नमस्ते से तो अधिकांश झगड़ा ही है शास्त्रोक्त अभिवादन प्रणाली का रूपान्तर जो अब विद्यमान है उस से और मनुष्यमात्र को अपना सजातीय मान कर जो नमस्ते की परिपाटी का प्रचार है उस से तो राई पर्वत के समान अंतर उन रामर करने वालों को भी भलीभांति ज्ञात होते चला है। जो हो चातुर्वर्ण्य में मुख्य ब्राह्मण को तो सब ही प्राकृत भाषा में प्रणाम पांलागन आदि शब्दों से ही अभिवादन करते हैं तब क्यों कर प्राचीन सनातन धर्म से विरोध हुआ? अब कदाचित् शर्मा जी का समाधान हो जावे परन्तु हमारे जिज्ञासु भाइयों के अतिरिक्त नमस्ते भाइयों की समझ में आने की प्रत्याशा दुराशा ही प्रतीत होती है॥ उपोद्घात में हमारी समाजी भाइयों से प्रार्थना है कि वे व्यर्थ वितंडावाद को छोड़ कर नम्र वा शान्तभाव से सभ्यता पूर्वक वेदोक्त धर्म का प्रचार करें तो सहज ही में देशोद्धार के साथ ही उन की समाज की जन्म साफल्यता हो जावे तथा अष्टाध्यायी व्याकरण जिस से वेद में आया भेदति क्रिया को आर्षत्व मानते भी भिनत्ति संप्रति बोलने लिखने मेंशुद्ध माना जाता है और जिस में मनुप्रोक्त अभिवादन प्रणाली के अनुकूल अनेक सूत्र पा० २। ३। ५५। ७३ आदि आशीर्वचनार्थक ही विद्यमान हैं और जिस को स्वा० द० जी ने भी प्रमाण माना उस आर्षवाणी का निरादर भी न होवे इत्यलमति विस्तरेण॥

आपका शुभचिन्तक नारायणप्रसाद मिश्र

बिलासपुर मध्य प्रदेश

आर्यसमाजियों से प्रश्न

महाशय कृपा कर निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर शीघ्र ही (एक सप्ताह के भीतर प्रेषित कीजियेगा—

(१) (यज्ञ में पशु हिंसा है या नहीं है ? देखिये निम्न लिखित पुस्तकें ॥

" अग्निषोमीयः सवनीय आनुबंध्यश्च ।
साद्यस्को नाम सोमयागविशेषः ॥

पृष्ठ ८८ और १११ लोगाक्षि भास्कर अर्थ संग्रह (पं० जीवानंद का छापा कलकत्ता)

जैमिनिः पंचमाध्यायस्य प्रथमपादे ॥ पश्वङ्गं स्यात्तदागमे विधानात् । यूपाङ्गं वा तत्संस्कारात् ॥ इत्यादि

इस पर देखिये शबर भाष्य और कुमारिल भट्ट और पार्थ सारथि मिश्र (शास्त्र दीपिका) जैमिनीय न्याय मा० वि० प्रधान—सोम प्रत्यासत्ति ००० ०० माधवाचार्य—

" आश्विनग्रहं कृत्वा त्रिवृता यूपं परिवीय सवनीय पशुमुपाकरोति "

ऐसे २ विषयों पर देखिये कृष्ण यजुर्वेद संहिता २-३-९ और प्रथम अष्टक और सप्तम अष्टक । और सायणाचार्य भी ॥

" अग्निषोमीयं पशुमालभेत "

इस पर देखिये शांकरभाष्य और श्री भाष्य इत्यादि यज्ञों में पशु हिंसा सिद्ध करते हैं या नहीं करते ?

(२) योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तंदनन्त्विमान्यस्माभिः पठ्यमानानि मंत्राक्षराणि" (अथर्व वेदे)

और भी मीमांसा „श्येनेनाभिचरन् यजेत" और सायणाचार्य भी देखिये यह जादू सिद्ध करते हैं या नहीं ?

(३) ओं प्रतिपदे स्वाहा

स्वामि दयानन्द कृत संस्कारविधि नामकरण प्रकरण तिथि और नक्षत्र और उन के देवता इत्यादि से फलित ज्योतिष सिद्ध होता है या नहीं होता?

(४) ऋतुगमन का विधि

एकादशी और त्रयोदशी (या ११ वीं और १३ वीं रात्रि का निषेध)

सत्यार्थ प्रकाश २ समु० क्या सिद्ध करता है उस में क्या पदार्थ विद्या है ?

(५) सत्यार्थ प्रकाश की जितनी आवृत्ति हुई हैं उन में न केवल पाठ भेद हैं परन्तु अर्थभेद भी हैं यह मानते हैं या नहीं ? आप से मेरी यही प्रार्थना है कि आप इन प्रश्नों के उत्तर प्रमाण सहित लिख कर नियत अवधि के भीतर अवश्य ही प्रेषित करेंगे आप को भी इन विषयों पर विचार करते वर्ष व्यतीत होगये और मेरी भी यही दशा रही आशा है कि प्रश्न और उत्तर में संबंध अवश्य ही रहेगा ॥ ता० २६ जून ०५ ॥

आपका कृपा कांक्षी विहारीलाल बी० ए० शास्त्री
गंजीपुरा जबल पुर सी० पी०

धर्मसम्बन्धी समाचार ॥

ला० उमरावसिंह जी रुड़की से लिखते हैं कि इस कसबे रुड़की ज़िले सहारनपुर में प्रायः १८ साल से कि जब प्रथम ही दौरा स्वा० द० सरस्वती जी का रुड़की में हुआ था सनातनधर्म सभा नियत है परन्तु कोई स्थान सभा का निज का न था बल्कि पं० आत्माराम जी हेडक्लर्क दफ़्तर नहरगंग रुड़की मेरठ निवासी के मकान में सभा हुआ करती थी पं० जी के स्वर्गधाम होजाने पर एक आहता ज़मीन पड़ी हुई जो शहर के अन्दर बाजार की सड़क के पास बहुत लंबा चौड़ा था सनातनधर्मावलम्बियों के प्रयत्न से डिग्री के ज़रिये मालिक ज़मीन से अर्सा तक़रीबन ३ साल का हुआ हासिल किया गया था कि जिस में एक कुआ लागत ओमती मुसम्मात पाला ला० रा० हु० रा० महेश्वरी रुड़की वाले से पहिले तय्यार हुआ उस के पश्चात् चिनाई धर्मसभा के स्थान की चन्दे के रुपये से प्रारम्भ हुई और एक बड़ा हवण और एक मकान रसोई आदि का तय्यार हुआ जिस में आरंभ से अब तक ४ हज़ार रु० व्यय होचुका और काम चिनाई का समाप्त होने न पाया था कि मुसम्मात मोई ने मन्दिर शिवालय चिनवाना आरम्भ कर दिया जो प्रायः समाप्त होने वाला है धन्य है ऐसे २ धार्मिक सज्जनों को जिन का रुपया ऐसे २ धर्म कार्यों में व्यय हो अब तक पुस्तकालय ध० स० का पं० आत्माराम जी के मकान में था और वहीं प्रतिदिन कथा हुआ करती थी और सं० पा० ध० स० के विद्यार्थी मुंशी चिरोंजी लाल की धर्मशाला में रहा करते थे परन्तु अब ज्ये० कृ० १० । ता० २८ मई स० १९०५ को तीन दिन जप होकर और हवन तथा ब्राह्मण भोजन होकर

शुभ अवसर पर नये मकान में श्रीनिवास जी शास्त्री ने पूजन के पश्चात् प्रथम विद्यार्थियों को पाठ पढ़ाया और ऋग्वेद की व्याख्या तथा बाल्मीकीय रामायण की कथा दस बजे तक सुनाई और वैदिक औषधालय खोला गया जिस में दीन अनाथों को औषधी मुफ्त मिलेंगी और सनातनधर्माश्रमस्थियों को असली लागत पर बिना नफे के और सर्वसाधारण को रियायती कीमत पर (दूसरी जगह की अपेक्षा) दी जावेंगी उस के पश्चात् दो वैश्यों को यज्ञोपवीत कराया गया और उत्सव समाप्त हुआ ॥

मुल्तान में धमधम ॥

पं० आशानन्द जी शास्त्री मन्त्री सद्धर्मोपदेशक सभा मुलतान से लिखते हैं कि—मूलस्थाण देशीय श्रीमद्धर्मोपदेशक सभा में २९ आषाढ़ वृहस्पति वार मथुरा वास्तव्य गोस्वामी द्वारिकाप्रसाद जी लैया, कोटअद्दू मुज़फ़रगढ़ादि नगरों को स्वाश्यनिस्सारित व्याख्यान पीयूषवर्षण से सिञ्चित करते हुए मुलतान में आय पधारे। अत्रत्य सद्धर्मोपदेशक सभा ने भजनमंडली तथा वाद्य विशेषादि से उन का सत्कारादि कर शेलणी जातिस्थावच्छिन्न पं० खिम्मूलाल जी के स्थान पर ठहराया—

तदनु शुक्रवार को गोस्वामी जी ने „कुपसंगरीगरां" में मूर्त्तिपूजा के विषय पर युक्तिप्रमाणान्वित सुललित व्याख्यान दिया। उन के व्याख्यान में विशेष यह भी था कि गोस्वामी जी सौ रुपये को साहरे सेज पर रख कर कहते थे कि जो व्यक्ती उक्त व्याख्यान का खंडन कर सके यदि वह खंडनजन समुदाय को स्वीकृत हो तो उस को १००) रुपये देंगे ॥

मगर विपक्षियों को चूं तक करने का भी ख्याल न मिला। व्याख्यानानन्तर उक्त सभा की भजनमंडली ने मनोहर भजन गायन किये।

द्वितीय दिन शनिवार पुराणों पर उत्तर दिया जिस में भली प्रकार दर्शाया कि जो जन पुराणों पर आक्षेप करते हैं उन की अज्ञता ही प्रकट है तृतीय दिन उन का व्याख्यान नदी तट पर „लांगिलां के उद्यान" में मनुष्य के कर्त्तव्य पर हुआ। जिस का प्रभाव लोगों पर बहुत हो पड़ा। पुरुषों की संख्या इस दिन बहुत थी, कोई पुरुष भी द्वितीय ओर ध्यान न लगाता था भौमवार को गोस्वामी जी ने एकाकी „अक्कग सघियाने में गमन किया। पुनः शुक्रवार को मूलस्थाण में आकर रियास्त बहावलपुर में गमन किया ॥ जिन्हों ने इन का व्याख्यानवारिपान किया वेहि कुसुमायित हुये ॥ इतिशम्

वंशीधर चौबे हरदुआ गंज ज़ि० अलीगढ़ से लिखते हैं कि-(हर्दुआगंज ज़िला अलीगढ़ में ज्येष्ठ शुक्ला २ चन्द्रवार सं० १९६२ व तारीख़ ५ जून सन् १९०५ ई० को एक १ दयानन्दी कायस्थ का यज्ञोपवीत हुआ जिस में मुरारीलाल उपदेशक तथान्य दयानन्दी भी आये थे कायस्थ साहब ने क़रीब ९० (नब्बे) विप्रों को निमंत्रण भिजवाया जिस में केवल प्रधान, मन्त्री, सभासद् २ इस प्रकार ४ दयानन्दी ब्राह्मण भोजन करने आये यहां की विप्र मंडली ने उक्त चारों को त्याग दिया और एक अहीर को भी जो भोजन कर आया था अहीर मंडली ने त्याग दिया ॥

बा० वृन्दावन जी ज्वाइंट सेक्रेटरी स०ध०सभा कटनी मुड़वारा जि० जबलपुर से लिखते हैं कि-देवरी सभा के वार्षिकोत्सव से लौटते हुए श्रीमान् पं० दीनदयालु जी व पं० ज्वालाप्रसाद जी व गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य जी व पं० नन्दकिशोर जी का शुभागमन इस कस्बे में हुआ और सनातनधर्मसभा के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हो अपने व्याख्यानों द्वारा यहां के वासियों को अपूर्व आनन्द प्रदान किया हम आशा करते हैं कि पुनः ऐसे देवस्वरूप महात्मा अपने दर्शन से हमें कृतार्थ करेंगे इस कार्य में हमारे मान्यवर पं० शिवप्रसाद शर्मा सेक्रेटरी सनातनधर्म सभा का उद्योग श्लाघनीय है कि जिससे हमें यह आनन्द प्राप्त हुआ ॥

रामेश्वर शर्मा सुनपत जि० दिल्ली से लिखते हैं कि-बहुत दिन से नगर सुनपत में एक सनातन धर्म की उन्नती करने वाली सनातन धर्म वर्द्धिनी बाल सभा नाम की नियत हुई है सो उस ने एक विचार किया है कि यदि बालकों की उन्नती करी जायगी तो देश की उन्नती होगी और जो बालक ही अपना धर्म जान जायंगे तो वों किसी पाखंडी के जाल में न फसेंगे इस वास्ते सब सज्जनगणों से प्रार्थना है कि शीघ्र फारम मंगा कर अपने बालकों के नाम लिखवावें और जो पूछना हो उस को पत्र द्वारा पूछ सक्ते हैं ॥

ज्वालापुर जि० सहारनपुर में ईश्वर की कृपा से सभा का उत्सव निर्विघ्न पूरा हो गया और आर्य समाजी कुछ भी नहीं बोल सके चुप चाप ही रहे श्री गंगा की कृपा से सब के मुख बंद हो गये और गङ्गा पूजन बड़े समारोह के साथ हुआ फिर गंगा सप्तमी पर भी ऐसा ही हुआ और अब दशहरे को होने की आशा है। यहां की पंडा सभा ने एक और नया यशकारी कार्य किया है कि जो यहां २।४ पंडा शराब पीते थे जिन की वजे से तमाम पंडा लोग बदनामी को पहुंच रहे थे वे जाती पतित कर दिये गये कोई भी ब्राह्मण उन के

हाथ का जल न पी सके मानो शूद्रवत् कर दिये आइन्दे को भी जो पीवेगा उसी दशा को पहुंचेगा श्री गंगा की कृपा से दिन पर दिन पंडे अपने धर्म पर तत्पर होते चले जा रहे हैं ॥

आवश्यक्ता ॥

सनातन धर्म सभा शहर रावलपिंडी को एक ऐसे विद्वान् उपदेशक की ज़रूरत है जो सनातन धर्मसंबन्धी ग्रन्थों के साथ श्री गुरुग्रन्थ साहिब (दरबार साहिब) को भी भली प्रकार जानता हो ज़रूरत पर दौरा भी करना होगा तनखाह (वेतन) अभी १५) से लेकर २५) महीना तक विद्या के अनुसार दी जावे गी । दौरे का खरच सभा अलग देवेगी ॥

तथा पुत्री पाठशाला के लिये दो अध्यापिकायों की (उस्तादिनियों की) ज़रूरत है जो हिन्दी भाषा और गुरुमुखी भी जानती हों । तनखाह (वेतन) १०) और ८) महीना दी जावेगी ॥ इन के लिये वृद्ध पण्डित भी दरखास्त कर सक्ते हैं ॥

दरखास्तें लाला भगत राम उपप्र वकील मंत्री के पास सहित प्रशंसा पत्रों के आवें ॥

दासानुदास भक्तराम उपम मन्त्री ॥
स० ध० सभा रावलपिण्डी ॥

विज्ञापन

श्रीसनातन धर्म मंडल हिसार (पंजाब) को एक शास्त्री पास योग्य पंडित की आवश्यकता है जो संतोषी और उत्साही परिश्रमी और धर्महितैषी हो वेतन २०) मासिक इस पतेपर पत्र व्यवहार हो ।

पं० सरदार सिंह शर्मा
मंत्री सनातन धर्म मंडल हिसार (पंजाब)

मध्यप्रदेश जिला नरसिंहपुर गाडरवारा ब्रह्माण्ड घाट नर्मदा यहां पर स्वर्गवासी सेठ नर्मदा प्रसादकी धर्मपत्नी श्री सेठानी हरीबाई ने एक धर्मशाला बनवाई है धर्मशाला अत्यन्त प्रशंसनीय है इसके निर्माण करने में १६०००) सोलहा हजार रुपया खर्चा हुआ शाला के भीतर राधाकृष्ण की प्रतिमा भी सुशोभित है देव प्रतिष्ठा वा शालाके उद्यापन में ५०००) पांच हजार रुपया खर्चा हुआ शालामें आए हुए साधु ब्राह्मण परिक्रमावासियों को भोजन देने-

के सिवाय देवपूजन शाला को भाजनत आदि सदा व्रतों को कोई अच्छी जीविका के लगाने का प्रबन्ध होरहा है—इसके सिवाय उक्त धर्मवती ने कई नर्मदा के घाटोंपर सदावर्त खोले हैं तथा अपने स्थानपर आए हुए साधु ब्राह्मण पण्डित औरभिक्षारियों का बहुत योग्य रूपसे सन्मान करती हैं इस प्रान्त में धर्मके कार्यों में पूर्ण परिचय देनेके कारण से इसमें सन्देह नहीं कि सेठानीहरी बाई मीराबाई सदृश हैं— इनके आमनुखतार श्रीयुतमुन्शी गिरधारी लाल भी बहुत सुयोग्य पुरुष हैं एवं बहुत प्रशंसनीय काम काज चला रहे हैं हाधिष्ठाता ऐसे पुरुषों की चिरायुकरें।

धर्मोपदेशक देवरी निवासी

पं० लक्ष्मीदत्त

विज्ञापन पत्रम्

सर्व साधारण को विदित हो कि हमारी गंधमूलावटी बीस प्रकार के प्रमेहों को नाश करती हुई स्मरण शक्ती तथा वीर्य्य पुष्ट कर पाखाना साफ लाती है शरीर को चुस्त करती है कीमत ० गोली का ५) मात्र है

इसके अति रिक्त रस धातु आसवारिष्टादि सभी मेरे औषधालय से आपको मिल सक्ते हैं यथार्थ शास्त्र रीति से बना कर तैयार करे जाते हैं नेत्रांजन भी बहुत चत्तमर हैं बड़ा सूची मगाय कर देखें ॥

हीरालाल शर्मा डाक० वबियाल जिला अम्बाला

सम्पादकीय सम्मति—हमारी राय में जितने औषधालय भारतवर्ष में हैं उन में बहुत कम सत्य का व्यवहार करने वाले हैं किन्तु लोभी स्वार्थी वंचक अधिक हैं। हमें विश्वास है कि पं० हीरालाल से औषधि मगाने वालों को धोका न होगा इस कारण धोके से बचना चाहते हुए ग्राहक गण पं० हीरालाल जी से औषध मगावें तो रोगों से अधिक बचना सम्भव है।

ह० भीमसेन शर्मा सम्पादक ब्रा० स० इटावा

।) चार आने में घड़ी (१२)

पेटेन्ट रामकोप स्टायल वाच जवाहिरात जड़ी हुई पेड पारसल द्वारा भेज देंगे प्रथम चार आना भेजकर सार्टीफिकेट मगाइये नियमादि साथ में होगा॥

ला० शंकरलाल जैनी सदर बाजार मेरठ

५ रु० का माल ३) रु० में

गौरी नागरी कोश

५५० पृष्ठ लगभग ५००० शब्द

जिस की पांच वर्ष से धूम मच रही थी अब छप कर तयार होगया। यह कोष वही है जो बड़े २ विद्वानों की मंडली द्वारा १० वर्ष के परिश्रम से तयार हुआ और ऐसा उत्तम कोष आज तक नहीं बना और न आगे को आशा है यह एक बी०ए० पास मास्टर है ४) में तनख़ाह के लिये नौकर होता है रातदिन पास रहेगा जब उस से हिन्दी उर्दू प्राकृत संस्कृत अरबी फारसी आदि शब्दों के मायने पूछोगे पहिले हिन्दी में समझायेगा फिर अंगरेजी में बतलायेगा। देव नागरी भंडार के रत्नों में यह कोहनूर हीरा है वकील मुख़तार जिमीदार अख़बार ग्रन्थकार लेखक आदि सब का सहायक है पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे लाट म्यकडानलबहादुर तथा रीवां नरेश एवं टेक्स्टबुक कमेटी पंजाब ने भी इस को क़दर की है ऐसा कायक मास्टर [कोष] अब और दूसरा नहीं है ट्रान्सलेशन [तर्जुमा हिन्दी से अंगरेजी अंगरेजी से हिन्दी] करने वालों के बड़े काम का है अतएव स्कूल के विद्यार्थी हिन्दी और अंगरेजी में योग्यता प्राप्त करने के अभिलाषी एवं अध्यापक (मास्टर) इस को खरीदने से न चूकें।

सुनते हैं साहब ! एक नई बात ॥

केवल पांच आने मात्र में रामकोष सिरटम घड़ी देंगे। किन्तु प्रथम पांच आने भेजकर हमारा सार्टीफिकेट हासिल कीजियेगा।

पांच सौ व्यापार मू० १)रु०

इस की सिर्फ सौ कापियां बाकी हैं जिन्हें मंगाना हो झट पट मंगाले अन्यथा पछताना होगा यह किस्सा नहीं है जो एकबार पढ़कर ताक में रख दो इस में रंग रोगन वार्निश साबुन स्याही लगाई ,मीनाकारी अर्क कपूर आदि चीज बनाने की रीति लिखी हैं ऐसा कोई व्यापारी नहीं जिस के काम की बात इस में न मिले।

दो अदद के ख़रीददार को एक अदद मुफ़्त में देंगे।

रबर टायप का अंग्रेज़ी छापाखाना मय सामान सहित २॥) रु० में।

नाम पता छोड़ पत्र विजिटिंग कार्ड कुछ भी छापिये मुहर बनाना भी न पड़ेगी। अब इस के द्वारा अंग्रेजी अक्षर जल्द सीख जाते हैं॥

प० सूर्यप्रसाद शर्मा मैनेजर सारस्वत कम्पनी मेरठ सिटी।

आ० स० का मूल्य प्राप्ति स्वीकार १ मई से १७ तक ॥

८५२ बा० बा० हरिभजनरायजी अरगसगंज २।=)
८४० बा० छेदीप्रसाद चौ० मुंगेर २।=)
८६६ सेठ गोकुलदास जी मुम्बई २।=)
९३५ राजा कृष्णलालबहादुरसिंह संचेडी २।=)
८४९ बा० ईश्वरी प्रसाद जी खगड़िया २।=
८१३ नारायण प्रसाद जी बैद्यनाथ २।=)
८८६ राजकुमार लाल जी खैरागढ़ २।=)
९४० सूरजराम शर्मा रोजातवाली २।=)
८४३ पं० अजाकी पाठक मुंगेर २।=)
८२१ पं० कल्याणदास गुजरवर २।=)
४९९ बा० कल्याणसिंह अजमेर २)
८०२ ला० शिवनारायण ल० अहारायचर २।=)
८३७ पं० शुकदेवसक्खनलाल रकहटी २।=)
९२६ बा० दयालदास गो० शिकारपुर २।=)
११७० श्रीशलेशनारायणशुक्लकानपुर ५॥-)
३१४ मुरलीधरज्योतिर्विद् अजमोड़ा २।=)
७२१ जगन्नाथप्रसाद शिकारपुर २।=)
८०७ गयाप्रसाद तिवारी कोठवा २।=)
९५३ बखतावरसिंह जी गंगोह २।=)
९७८ सेठ लालमणि जी सिवनी छ०३॥)
७४५ पं० लद्दाराम कर्णपोट २।=)
९२१ रा० केवलराम साह वजीराजकोट २।=)
११७१ पं० ध्रुवदेव जी करनाल २।=)
४९२ पं० नृसिंहदास झिंगन ।-)
४८७ पं० बालकृष्ण शर्मा खंगाल २।=)
५१ बा० लौलीराम जी रुड़की ३)
११६९ रामाज्ञा त्रिपाठी शिकारपुर ५।-)
८१५ पं० रामगोपाल शर्मा बदायूं २।=)
३२२ पं० तुषाराम शर्मा सिकन्दराबाद २।=)
१७७ पं० बालकराम जी सिकन्दराबाद २।=)
४३॥ बा० जगन्मोहन वर्मा देहरादून ५)
५१२ हरिहरप्रसाद पाठक सहसवार १-
१८४ बा० हरिप्रसाद टि० बुलन्दशहर २
४४४ प० हरि[illegible] शर्मा शिकारपुर २।=
१८१ पं० रतनलाल शर्मा बुलन्दशहर २।=
३६५ पं० दुर्गादत्त देवीदीन क्योंगांव २।
११३२ सेठ सीनजी लीलाधर मुम्बई २।=
४४३ बा० माधवराव जी रायपुर २।=
२११ प० रामलाल शास्त्री अमृतसर २।=
३३९ लक्ष्मीनारायण भार्गवनूह २।=
३७१ मन्त्री भारतीभवन प्रयाग २।=
३९२ बा० चांदबिहारी जी आगरा २
४१३ पं० कालीचरण त्रि० फरीदपुर २।=
४५९ पं० मुरारीलाल सिकन्दराबाद २।=
४६६ पं० बद्रीदत्त शर्मा काशगंज २।=
३६७ किसनलाल आढ़तिया सिकं० २।=
हरीराम हकीमशाहजादपुर १॥-
७३३ ठा० दिग्पालसिंह भोगियापुर २।
४०८ बा० हरिचरण जी मुरादाबाद २।=)
३८५ पं० मनीराम शर्मा नैनीताल २।=)
४३३ पं० मालारामात्मज खंडवा २।=)
४८१ पं० प्रेमवल्लभ शर्मा नैनीताल २।=)
३८० रलियाराम जी जलालपुर ज० २।=)
११७२ मूलचन्द गोधराम कींझिर २।=)
७०९ पं० द्वारकाप्रसाद मुम्बई २।=)
११३३ ठ० लड्डोभवान् मुम्बई २।=)
४९४ रा० मूलजीपुरुषोत्तम मुम्बई २।=)
९०४ रामचरण शर्मा अलवर २।=)
५२० बा० छेदालाल मकरानीपुर २।=)
११७४ पं० रामकरण जी इन्दौर २।=)
१७६ ला० रामदास फकीरचंद होती
मरदान ३॥)

REGISTERD No 242

ब्रा०स०सम्बन्धी पत्रादि पं०भीमसेन शर्मा सम्पादक ब्रा०स०इटावा के पतेसे भेजिये

ब्राह्मणसर्वस्व

THE BARHMAN SARVSAW

आर्य्यंम्मन्यसदार्य्यकार्य्यविरहा आर्य्यास्त्रयीशत्रव,
स्तेषांमोहमहान्धकारजनिता-ऽविद्याजगद्विस्तृता ।
तन्नाशायसनातनस्यसुहृदो धर्मस्यसंसिद्धये,
ब्रादिस्वान्तमिदंसुपत्रममलं निस्सार्य्यतेमासिकम् ॥
धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय,पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात्॥

भाग ४ } मासिकपत्र मासाङ्क { २

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः
पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

पं० भीमसेन शर्मा द्वारा सम्पादित होकर
वेदप्रकाश यन्त्रालय-इटावा में
मुद्रित होकर प्रकाशित होता है ॥
संवत् १९६२ वि० ३० जून सन् १९०५ ई०

विषयः-१-मङ्गलाचरण स्तुति प्रार्थना ।२-कर्मकाण्ड देवपूजा । ३-आ० समाजी मत की वेदविरुद्धता । ४-श्राद्ध मण्डन ५-वेदप्रकाशकाअज्ञान । ६-प्रेरितलेख । ७ आदि आर्यसमाज ८-धर्मसम्बन्धी समाचार । ९-विविधसमाचार । १०-सूचना । ११-विज्ञापन ॥

ब्राह्मणसर्वस्व का अगाऊ वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित २।) है

विज्ञापन छपाने वंटाने के लिये नियम ॥

१–जो विज्ञापन ब्रा० स० में छपें वा बांटे जावें उन के सत्यमिथ्या के उत्तरदाता विज्ञापन वाले ही समझे जांयगे । इस कारण ग्राहक लोग शोच समझ के व्यवहार करें ।

२–ब्रा० स० में एक वार कोई विज्ञापन एक १ पेज से कम छपावे तो =)॥ लैनके हिसाब से लिया जायगा । तीन मास तक =)। ६ मास तक =) एक वर्ष तक -)॥ प्रति पङ्क्ति प्रतिमास लगेगा ।

३–एक वार एक पेज पूरा छपाने पर ३) लगेगा । १ पेज तीन मास तक ७) छः मास तक १२) और १ वर्ष तक २०) लगेगा ।

४–जिस किसी को विज्ञापन बंटाना हो वह ब्रा० स० के दफ़्तर से पूछ कर ब्रा०स० का कोड़ पत्र और तारीख़ छापनी चाहिये । ४ मासे तक का विज्ञापन ४) में ८ मासे तक का ५) में और १ एक तोला तक का ६) में बांटा जायगा । रु० छपाई और विज्ञापन बंटाई का पहिले लिया जायगा ॥

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ॥

१–यह मासिकपत्र साढ़े छः फारम ५२ पेज रायल साइज का प्रतिमास की अन्तिम तारीख़ को निकलता है ॥

२–इस का वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित बाहर के ग्राहकों से २।) सवा दो रुपया अगाऊ और इटावे के ग्राहकों से २) लिया जाता है ॥

३–अगला अं० पहुंच जाने पर पिछला न पहुंचने की सूचना जो ग्राहक लिखेंगे उनको पिछलाअं० विना मूल्य फिर भेजा जायगा। देर होने पर द्विवारा अं० =) प्रति के हिसाब से मिलेंगे।

४–राजा रईस लोगों से उन के गौरवार्थ ५) वार्षिक मूल्य लिया जायगा ॥

५–पुस्तकों की समालोचना भी इस में यथोचित हुआ करेगी ॥

६–जो पहिला अंक नमूना का मंगाकर ग्राहक होना चाहें वे तत्काल २।) भेजें और ग्राहक होने की सूचना दें । ग्राहक न हों तो ≡) के टिकट नमूना का मूल्य भेज देवें अन्यथा द्वितीय अंक वी०पी० उनकी सेवा में पहुंचेगा ।

७–मूल्य भेजते समय ग्राहक लोग अपना नम्बर अवश्य लिखा करें । चिट्ठी पत्री नागरी वा अंग्रेज़ी में भेजा करें उर्दू के हम उत्तरदाता नहीं हैं ।

८–कहीं बदली आदि के कारण स्थानान्तर में जावें तो अपना पता अवश्य बदलवावें । अन्यथा अंक न पहुंचने के उत्तरदाता हम न होंगे ॥

९–जो ग्राहक लोग अन्य ग्राहक करावेंगे उन को यथोचित कमीशन मिलेगा और १० ग्राहक कराने वाले को १ मासिक पत्र विना दाम मिला करेगा ॥

॥ ब्राह्मणसर्वस्व ॥

भाग ४] उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत [अङ्क २

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्माब्रह्मदधातु मे ॥

मङ्गलाचरणम् ।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदंवशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ अथर्वणि ॥

अ०—यस्य प्राणस्य सर्वमिदं चराचरं वशेऽधीनं वर्त्तते यश्च भूतः प्रकटः सन् सर्वस्येश्वरोऽधिष्ठातास्ति । यस्मिंश्चाधारभूते प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । तस्मै प्राणाय नमस्करोमि ॥

भा०—प्रकृतिभूमभिर्ऋषयः, स्तुवन्तीत्याहुरिति नैरुक्तं सिद्धान्तमुपादाय वेदाशयोऽत्र समासतएव दर्श्यंते । प्रत्यक्षान् मर्त्यलोकस्थपदार्थान्पुरस्कृत्य ऋषयो मन्त्रद्रष्टारो मन्त्रसाक्षात्कर्त्तारः प्रजापतेर्नामान्तररूपान्तरभूता वस्तुतः प्रजापतेरभिन्नव्यक्तिमन्तोऽपिसूत्रपटवद्भिन्नव्यक्तिकाइव प्रतीयमानास्तपस्विनः प्रकृतिभूमभिः प्रकृतिमहत्त्वेन तांस्तान् पदार्थान् स्तुवन्ति । एवमत्रापि चक्षुरादिष्ववस्थि

तं प्रत्यक्षं प्राणं पुरस्कृत्य प्रकृतिमहत्त्वेन वेदे ऋषिस्तुतिः। मर्त्यलोके चक्षुरादिष्ववस्थिता जीवनशक्तिः प्राणपदवाच्या । अयमेव प्राणः स्वर्गलोक आदित्यपदवाच्यइत्युपनिषत्सु स्पष्टं दृश्यते । अस्मत्प्राणस्यादित्यः प्रकृतिः स च स्वांशभावेनावस्थितं लोकत्रयस्थं प्राणमुपजीवयन्नुदयमस्तं च गच्छति । तेन स्वर्गमर्त्यलोकस्थप्राणयोरुपजीव्योपजीवनसम्बन्धः। ईश्वरएव सर्वं चराचरं जीवयति स च प्राणनामरूपेणैव तस्मादेव प्राणपदेनापि सर्वप्राणप्रकृतिरीश्वरोऽत्र स्तूयतइति । प्राणप्रकृतित्वादेव प्राणस्य प्राणइत्युच्यते ॥

भाषा–(यस्य) जिस प्राण के (सर्वमिदम्) यह सब स्थावर जंगम मात्र संसार (वशे) आधीन वा अधिकार (कब्जे) में है और (योभूतः) जो प्रकट प्राण अपान व्यान आदि रूप से इन्द्रिय गोचर होता हुआ वा सूर्यरूप से सर्गारम्भ में उत्पन्न होता हुआ (सर्वस्य, ईश्वरः) सब चराचर का अधिष्ठाता होता है । और (यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम्) जिस के सहारे से सब सूर्य चन्द्र पृथिवी वायुनक्षत्रादि अपनी २ मर्यादा में ठहरे हुएहैं । उस (प्राणाय नमः) प्राण के लिये हम लोग नमस्कार करते हैं । अर्थात् प्राण नामरूप वाले ईश्वर भगवान् को हमारा बार २ किया नित्य २ का नमस्कार प्राप्त हो ॥

भा०–कदाचित् हमारे पाठकों को स्मरण होगा कि हम वेद का परम सिद्धान्त कि जो वेद का मर्म स्थान है उस को कहीं लिख चुके हैं कि (एकमेवाद्वितीयम्) सजातीय विजातीय स्वगत भेद शून्य एक शुद्ध चैतन्य स्वरूप ब्रह्म का प्रतिपादन ही वेद का परम सिद्धान्त है । परन्तु यह प्रयोजन वेद में अनेक प्रकार के भिन्न २ सहस्रों प्रत्यक्ष नाम रूपों द्वारा दिखलाया गया है । वे सब नाम रूप नाशवान् अनित्य होने से मिथ्या हैं । और जिस की सत्ता को लिये हुए वे नाम रूप अपनी २ हालत में विद्यमान हैं वही एक ब्रह्म सत्य है । जैसे तरंग यह एक नाम और जल का ऊंचा उछलना यह रूप है परन्तु जल के वास्तव स्वरूप में उस नाम रूप ने कुछ बाधा नहीं पहुंचा पाई है । जल अपने स्वरूप में ज्यों का त्योंही विद्यमान है । हम साधारणों की

दृष्टि में तरंग नाम रूप जल से भिन्न कुछ प्रतीत होता है भिन्न रूप से ही व्यवहार किया जाता है परन्तु ज्ञानी की दृष्टि में तरंग नाम रूप जल से भिन्न कुछ वस्तु न होने से मिथ्या है केवल जल ही सत्य है। सोचने वाले सभी जान भी सकते हैं कि वास्तव में सूत से भिन्न कपड़ा सुवर्ण से भिन्न गहना और जल से भिन्न तरंग फेन बबूलादि कुछ भी वस्तु नहीं वा यों कहो कि कपड़ादि मिथ्या हैं वा यों कहो कि कपड़ा गहना और तरंगादि भी सूत सुवर्ण और तरंग जल के ही नाम हैं वास्तव में वे सूत आदि ही हैं। वैसे ही यहां वेद का अभिप्राय है कि प्राणादि सब एक ब्रह्म के ही नाम हैं। जैसे प्रत्यक्ष कपड़ा ज्ञानी को सूत रूप ही दीखता है। सूत से भिन्न कपड़ा कुछ भी वस्तु नहीं वैसे ही प्रत्यक्ष प्राणादि भी ज्ञान दशा में ब्रह्म रूप ही दीखते हैं। ब्रह्म से भिन्न प्राणादि कुछ भी वस्त्वन्तर नहीं हैं। सब ज्ञानों की अन्तिम सीमा वेद है। वेद का ज्ञान ही सर्वोपरि है। उस वेद का अभिप्राय यह है कि विशेष कर मनुष्यों के कर्म फल भोगार्थ और मोक्ष के लिये संसार की उत्पत्ति स्थिति है। सो कर्म उपासना ज्ञानकाण्डरूप वेद का अभ्यास करते हुए मनुष्य तीन आश्रम रूप मार्गों में ही चलते २ कर्म फल भोग लें और अन्त में अपवर्ग नाम मोक्ष को सुगमता से प्राप्त हो सकें। इस का सुगम उपाय यही था और है कि प्रत्यक्ष स्थूल पदार्थों को लक्ष्य करके ब्रह्म को बताया जाय तो सुगमता से जान सकेंगे। यदि अलक्ष अगोचर निराकार निर्विकार सूक्ष्म व्यापक ब्रह्म को साक्षात् जतलाने का वेद उद्योग करता तो कोई भी ईश्वर को न जान पाता क्योंकि उस का पता निशान कुछ भी नहीं कि वह कहां है कैसा है। इस लिये प्राणादि प्रत्यक्ष नाम रूपों से सर्व स्थिति के हेतु एक ब्रह्म का उपदेश वेद में है और वही ब्रह्म सब का प्रकृति नाम उपादान कारण है उसी की महिमा को लेकर प्राणादि नाम रूपों से ऋषियों ने वेद मन्त्रों द्वारा स्तुति की है। जैसे कि सुवर्ण के आभूषण की स्तुति सुवर्ण के बहुमूल्य होने से ही होती है। चाहे यों कहो वा मानों कि कारण की उत्तमता से ही कार्य की जो उत्तमता है वह वास्तव में कार्य की प्रशंसा वा उत्तमता नहीं किन्तु कारण की ही है। इसी अभिप्राय से निरुक्तकारने (प्रकृतिभूमभिरृषय०) इत्यादि दैवतकाण्ड निरुक्त में लिखा है कि प्रकृति नाम उपादान कारण की महिमा को लेकरही कार्य पदार्थों की स्तुति ऋषियों ने वेदमन्त्रों द्वारा की है। वह स्तुति वास्तव में कारण की ही है किन्तु कार्य की नहीं क्यों कि सब कारणों का भी कारण सब की प्रकृति एक ही ब्रह्म है। यह बात अच्छे प्रकार वेद वेदान्त से सिद्ध

हो चकी है । इसी सिद्धान्त को लेकर वेद मन्त्र का आशय संक्षेप से यहां दिखाया जाता है । इस मर्त्य लोक के प्रत्यक्ष पदार्थों को सामने करके प्रजापति के नामान्तर रूपान्तर वास्तवमें प्रजापति से भिन्न व्यक्ति वाले न होने पर भी सूत और कपड़ाके तुल्य भिन्नर प्रतीत होते हुए तपस्वी ऋषि व्यक्तियों ने प्रकृति नाम ईश्वर की महिमाको लेकर उन २ पदार्थों की स्तुतिकोहै। वह सब स्तुति परमात्मा कीहै । जैसे अश्वमेध यज्ञ में घोड़े को सामने कर के अश्व नाम रूप से बड़ी स्तुति वेद में की गई है वह भी ईश्वर स्तुति है इसी प्रकार यहां भी मनुष्यादि के चक्षु आदि इन्द्रियोंमें अवस्थित जीवन शक्ति प्राण कहाती है ।

(चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते)

प्रश्नोपनिषद् के तृतीय प्रश्न में लिखा है कि मुख नासिका द्वारा निकलने पैठने वाला प्राण आखों और कानों में रहताहै। वही प्राणस्वर्गलोकमें आदित्य वा सूर्य कहाता यह बात उपनिषदोंमें स्पष्ट दीखतीहै । इन लोगोंके प्राणों के आदित्यदेव सूर्यनारायण प्रकृति नाम उपादान हैं। वह आदित्यदेव अपने अंशरूप से अवस्थित तीनों लोक के असंख्य प्राणों को उपजीवित करते जीवन को सहायता देते हुये उदय तथा अस्त को प्राप्त होते हैं इस से स्वर्ग और मर्त्यलोकस्थ प्राणों का उपजीव्य और उपजीवक सम्बन्ध माना जायगा । अभिप्राय यह है कि समष्टिरूप से जो जीवन शक्ति है कि जिस ने समस्त चराचर को अपनी २ दशा में थांभ रक्खा है । वही प्राणपद वाच्य ब्रह्म है उस का प्रधान अंश आदित्य देव है इसी लिये उपनिषदों में लिखा है कि (आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः) आदित्य देव साक्षात् ब्रह्म है यह वेद की आज्ञा है । चाहें यों कहो कि हमारे प्राणों की प्रकृति सूर्यदेव और सूर्य की प्रकृति परमात्मा है । यह भी ध्यान रहे कि पृथिव्यादि में भी वह शक्ति कि जिस से पृथिव्यादि ठीक २ अपनी दशा में विद्यमान रहते हैं उन के टुकड़े २ नहीं हो जाते वा मर्यादा से नहीं चलते वह प्राणशक्ति पृथिव्यादि में है । और अपनी ठीकदशा में रहनाही पृथिव्यादि का जीवनकाल है। इस से यह सिद्ध हुआ कि प्राणनाम रूप से ईश्वर ही सब की जीवन सत्ता का हेतु है । जीवन की समाप्ति मृत्यु वा लय होने का केवल इतना ही अभिप्राय है कि उस का तरङ्ग शान्त हो गया उस अंश की विकार वृद्धि मिट गई । इस से समष्टि रूप प्राणमें कुछभी परिवर्त्तन नहीं हुआ। ईश्वर प्राण नामरूप से ही सबकी स्थिति करताहै इसीसे सब प्राणों के कारण ईश्वरकी स्तुति यहां प्राणपदसे जानो। प्राणों का कारण होने से ही परमात्माको प्राणोंका भी प्राण उपनिषदादिमें कहाहै ॥

आ० स० अं० १ पृ० १० से आगे कर्मकाण्ड देवपूजा विषय ॥

(प्रश्न ७) मूर्त्ति पूजा से इतनी हानि भारत वर्ष को हुई कि मुसलमानों ने राज्य छीन लिया मूर्त्तियां तोड़ डाली परन्तु मूर्त्तियां कुछ भी न कर सकीं जब आपत्काल में भी मूर्त्तियों से कुछ रक्षा न हुई और वे तोड़ने वालों को कुछ भी दण्ड न दे सकीं तो फिर मूर्त्तिपूजा से लाभ ही क्या है ? । यदि आप कहें कि कोई छोटा लड़का बाप के ऊपर विष्ठा मूत्र करदे तो बाप उसको कुछ नहीं कहता ऐसे ही मूर्त्तियों ने भी यवनादि को बालवत् समझा । सो ठीक नहीं क्योंकि जब बेटा बाप को मारने के वास्ते उद्यत होता है उस समय बाप भी अवश्य उस को सजा देता है । ऐसे ही अपने तोड़ने वालों को मूर्त्तियों को भी सजा अवश्य देनी चाहिये थी ॥

(उत्तर ७) मूर्त्तिपूजा वा देवपूजा ईश्वरोपासना का अर्थात् वेद के उपासनाकाण्ड का विषय है । यदि इस का गूढ़तत्त्व हम पाठकों को ठीक २ न समझा सकें वा जो कुछ लिखें भी उस से समाजी जैसों का संतोष न हो अर्थात् समाजियों की समझ में न आवे तो कुछ भी आश्चर्य नहीं क्योंकि जैसे चर्स गांजा पीने वाले, वेश्यागामी, तथा जुआरी आदि मनुष्यों को कैसा ही अधिक समझाया जाय पर वे कदापि नशा आदि को नहीं छोड़ते उन की बुद्धि में अविद्या के प्रबल दुराग्रहने पूरा २ दखल कर लिया है । वैसे ही इन समाजियों को कैसे ही प्रबल युक्ति प्रमाणों से समझा जाय पर इन के हृदयों में ईश्वरोपासना के विरोधी उस अंश ने पूरा २ दखल कर लिया है कि जो आसुरी संपत् में परिगणित है । इस से इन का समझ सकना भी सम्भव नहीं तो भी हम अपने पाठकों के अवलोकनार्थ उक्त प्रश्न का उत्तर युक्ति प्रमाण सहित संक्षेप से लिखते हैं यदि कोई पुरुष उपासनाकाण्ड के तत्व सिद्धान्त वा मर्म को जानता हो तो उस के हृदय में ऐसे प्रश्न कदापि नहीं उठ सकते । क्या कोई कह सकता वा समझदार मनुष्यों के ध्यान में यह बात किसी प्रकार जम सकती है कि भारतवर्ष में मूर्त्तिपूजा का प्रचार न होता मन्दिर न होते आ० समाजियों की तरह केवल निराकार शून्यवादी सब होजाते तो मुसलमान लोग भारत वर्ष का राज्य न छीन सकते ? अभी बहुत दिनों से रूस जापान का युद्ध चला जापानियों ने रूस को बहुत नीचा दिखाया वा यों कहो कि रूस हार गया तब क्या रूस मूर्त्तिपूजक था ? ।

मुसलमान अब भी मूर्त्तिपूजक नहीं फिर उन का राज क्यों न रहा ? । क्या यह कहीं का नियम है कि मूर्त्तिपूजकों का राज्य छिन जाया करे और मूर्त्ति-पूजा के विरोधियों का राज्य हुआ करे ? । चीन जापान आदि में बौद्धों का राज्य है पर बौद्ध भी द्वादशायतन पूजा मानते हैं जो मूर्त्तिपूजा में ही सं-मिलित हो सकेगी फिर बौद्धों का राज्य किसी ने क्यों नहीं छीन लिया ? । और यह भी विचारने योग्य है कि सनातनधर्मी राजा पहिले से ही मूर्त्तिपूजक थे फिर उन मूर्त्तिपूजक शूरवीर क्षत्रियों का राज्य लाखों करोड़ों वर्ष क्यों चला आया ? । कि-सी ने क्यों नहीं छीन लिया ? । हमारा निश्चय तो यह है कि विषयासक्ति स्वार्थ-परता का बढ़ना ब्रह्मचर्य का नष्ट होना शूरवीरता का छूटना आलस्य प्रमाद नि-द्रा और नशा का बढ़ना वेदादिशास्त्रों का पठन पाठन छूटना आचार विचार से हीन होना इत्यादि कारण कालक्रम से क्षत्रिय राजाओं में प्रविष्ट हुए जिससे वीर क्षत्रियों का राज्य यवनादि ने छीन लिया । राज्य का सामान कुछ और है राज्य संसारी काम है इस के लिये संसारी नियम धर्मों के पालन की वि-शेष आवश्यकता है । और मूर्त्तिपूजा देवपूजा ईश्वरभक्ति का प्रधान लक्ष्य परमार्थ की ओर चला हुआ है । हां यह बात विचारशीलों को सोचने से अवश्य ध्यान में आवेगी कि जैसे ईसाइयों का मत वा धर्म गिरिजाघरों से ही बंधा हुआ है । गिरिजाघरों का नगर २ में बनना नियत समय ईसाइ-यों का वहां जाना अपनी प्रणाली के अनुसार स्तुति प्रार्थना ध्यानादिरूप पू-जा ईसामसीह की तथा उन के बाप खुदा की करना शूली की ओर सब का मुख होना । शूली को मूर्त्ति स्थानी मानना । यदि यह सब कृत्य ईसाइयों के यहां न होता तो कौन कह सकता है कि जबानी जमा खर्चमात्र से ईसाई धर्म भी भूमण्डल पर ठहर जाता । इसी के अनुसार मुहम्मदी मजहब भी म-स्जिदों और उन में होने वाली निमाजरूप पूजा पर निर्भर है वा कुछ ब-धा हुआ है । इसी के अनुसार हमारा निश्चय है कि मुसलमान लोगों ने जब हिन्दुस्तान का राज्य छीन लिया है उस समय देवताओं के मन्दिर और मू-र्त्तियों की पूजा भारतवर्ष में यदि न होती और इसी से वे लोग मन्दिरादि को तोड़ते भी नहीं तो अब तक सभी मुसलमान होगये होते वा नास्तिकादिरूप से कुछ हिन्दू भी बने होते तो वेदोक्त सनातन हिन्दू धर्म का नाम निशान भी न रहा होता । वैदिकसनातनधर्म का राज्य न रहने पर भी उसके प्रबल म-

न्दिरों रूप झण्डे हिन्दुस्तान के एक छोर से दूसरे छोरों तक बराबर फहरा रहे हैं। वा यों कहो कि ये देवमन्दिर ही सनातन वैदिकधर्म के बड़े २ प्रबल स्तम्भ हैं इन्हीं ने इस धर्म और वेदशास्त्रों को साध रक्खा है। जिस वैदिक सनातनधर्म रूप किले को तोड़ने के लिये जैन बौद्ध ईसाई मूसाई समाजी आदि प्रबल विरोधियों के दत्त चित्त तत्पर होते आने पर भी आज तक किसी से न तोड़ा गया क्योंकि इस किले में बड़े २ प्रबल स्तम्भे लगे हैं। विरोधियों का जिन में गोला बारूद कुछ काम नहीं देसकता। वास्तव में सोचें तो जान पड़ता है कि जब तक भारतवर्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक देवमन्दिर और मूर्त्तिपूजा विद्यमान है तब तक धर्म का राज्य बना हुआ है। धर्म का राज्य न पहिले नष्ट हुआ न आगे सम्भव है। भारतवासी ब्राह्मणादि स्वधर्म प्रेमी हैं धर्म का राज्य बना होने से इन को पूरा सन्तोष है धन बटोरने का राज्य कुछ दिन मुसल्मानों ने किया अब ईसाई करते है इस राज्य के लिये धनलोभी ही विशेष कर रोते हाहाकार मचाते हैं। यदि मुसलमान लोग देव मन्दिरों तथा मूर्त्तियों का तोड़ना जनेऊ तुड़वाना आदि धर्म विषय में हस्तक्षेप अत्याचार न करते तो बादशाही राज इतना जल्दी नष्ट न होता। और जब देवमन्दिरादि होते ही नहीं तो उतने अत्याचार का मौका मुसलमानों को न मिलता। इस से मूर्त्तिपूजा का होना मुसल्मानी राज्य को नष्ट करने वाला तो सिद्ध हुआ ॥

मतलब यहहै कि मूर्त्तिपूजा से भारतवर्ष की कुछ भी हानि नहीं सिद्ध होती किन्तु ऐसे घोर कलिकाल में यदि धर्म की रक्षा के लिये कोई अवलम्ब वा सहारा कहा माना जासकता है तो वह ब्राह्मणादि वेदानुयायियों के लिये देवमन्दिर देवमूर्त्तियां ही हैं और जब तक ये सब विद्यमान हैं तब तक कोई राज्य करे पृथिवी के विकार सोना चांदी जड़ पदार्थों को भारत वर्ष से कितना ही कोई खेंचले जाओ पर सनातन वैदिक धर्म का झण्डा फहराता ही रहेगा। इस धर्म का एक रोम भी कोई नहीं खोंच सकेगा। अब रहा यह विचार कि मूर्त्तियों ने अपनी और अपने पूजकों की रक्षा क्यों नहीं की ? तोड़ने वाले यवनों को दण्ड क्यों नहीं दिया ?। सो इस का संक्षेप उत्तर यह है कि मूर्त्तियां पत्थरादि की बनी जड़ पदार्थ थी और अब भी जड़ हैं उन को चेतन कोई भी न मानता था और न अब कोई मानता है तब दण्ड कैसे देतीं ?।

प्रश्न-अब तो तुमने ही मान लिया कि मूर्त्तियां जड़ हैं यही हमारा पक्ष था कि जड़ मूर्त्तियों के पूजने वाले जड़ के उपासक सिद्ध हो गये।

उत्तर-तुम लोगों की बुद्धि वास्तव में घुम गयी है। हम जड़पूजक वा जड़ोपासक नहीं हैं किन्तु मूर्त्ति को हम अधिष्ठान मानते हैं। जैसे प्रत्येक जीवात्मा का अधिष्ठान प्रत्येक शरीर है। उस जीवात्मा की पूजा सेवादि कोई करे तो शरीर रूप अधिष्ठान में ही कर सकता है शरीर के बिना उस का कहीं पता भी नहीं लग सकता। और शरीर चमड़ा हड्डी मांस लोहू मल मूत्रादि जड़ वस्तुओं का समुदाय है। क्या जीवात्मा की पूजा सेवा करना चाहता हुआ उस के शरीर की पूजा न करके केवल उस की सेवा पूजा किसी प्रकार कर सकता है? इस बात का तुम लोग ठीक २ जबाब दो। और शरीर की पूजा की तो चमड़ा रुधिर मांस हाड़ इन जड़ों की पूजा होगी। और जब इन जड़ों की पूजा करने से जीवात्मा की सेवा पूजा हो जाती है तो मूर्त्ति की पूजा करने से उस देवता की पूजा क्यों न होगी कि जिस की वह मूर्त्ति शरीर रूप अधिष्ठान बनी बनाई गई है।

प्रश्न-शरीर तो चेतन है शरीर में जीवात्मा प्रत्यक्ष प्रसन्न होता है इस से जान लेते हैं कि उस की सेवा पूजा हो गई। वैसे मूर्त्ति में चेतन देवता शरीर में जीवात्मा के तुल्य होता तो शरीर के तुल्य मूर्त्ति भी चेतन हो जाती और देवता पूजा से प्रसन्न होना जाहिर कर देता।

उत्तर-शरीर चेतन नहीं यह तुम्हारा अज्ञान है किन्तु जैसे अग्नि के लोहे में प्रवेश करने पर लोहा अग्नि रूप दीखता है पर लोहा अग्नि नहीं। वैसे चेतन जीव के प्रवेश से शरीर चेतन सा दीखता है पर शरीर चेतन नहीं है। प्रत्यक्ष प्रसन्नता चाहते हुये तुम प्रत्यक्ष वादी सिद्ध हुये। यदि कोई महात्मा काष्ठमौन है जो किसी प्रकार हाथ आंख मुखादि से कुछ संकेत भी नहीं करता समाधिस्थ सा बैठा है उस की कोई सेवा पूजा करे उस को शरीर के हानि लाभ से कुछ हर्ष शोक भी नहीं वह सेवक से प्रसन्नता भी प्रकट नहीं करता तो क्या उस की सेवा पूजा करना निरर्थक है?। उस को तुम कैसे जान लोगे कि उस की सेवा पूजा हो गई।

पर वह महात्मा बहुतकाल तनमन धनसे सेवा करने वाले को ऐसा आशीर्वाद मन में ही दे सकता है जिस से सेवक का इष्ट सिद्ध होजाय। अथवा अ-

हुत काल बाद समाधि जगने पर स्पष्ट प्रकट भी आशीर्वाद दे सकता है तब क्या सेवा निरर्थक हुई ? कदापि नहीं । अब रहा यह कि चेतन देवता के मूर्त्ति में मौजूद होने पर भी शरीरों के तुल्य मूर्त्ति चेतन क्यों नहीं होजाती ? तो इस का उत्तर यह है कि तुम्हारा निराकार चेतन ईश्वर भी तो सभी जड़ पदार्थों में मौजूद है ऐसा तुम मानते हो फिर वे सभी जड़ पदार्थ चेतन शरीर के तुल्य क्यों नहीं होगये ? । (भाई हमें तो इस का उत्तर आता नहीं तो तुम्हीं बताओ) तो हम बताते हैं कि जीव शरीर के साथ कर्मों के कारण बद्ध है अज्ञानग्रस्त है । और ईश्वर देवता मूर्त्ति आदि किसी में बद्ध नहीं सब में रहते हुए भी सब से मुक्त हैं इसी कारण जीव तो शरीर को मान लेता है कि यह शरीर रूप ही मैं हूं इसी कारण शरीर के हानि लाभ में अपना हानि लाभ मानता हुआ सुख दुःख भोगता है । ईश्वर देवता मूर्त्ति के हानि लाभ में अपना हानि लाभ कुछ नहीं मानते हैं । केवल पूजक उपासक की भक्ति श्रद्धा तत्परता पर सन्तुष्ट हो के उस को इष्ट सिद्धि का आशीर्वाद दे देते हैं । इस से वह कृतकृत्य हो जाता है अधिक प्रसन्न हुए तो प्रकट होके साक्षात् भी वरदान दे देते हैं । और मूर्त्ति वा मन्दिर तोड़ने आदि से ईश्वर देवता का निरादर अवश्य होता है इसी से यवनों का राज्य भी नहीं रहा जैसे गम्भीर महात्मा क्षण २ में किसी से रुष्ट वा तुष्ट नहीं होते वैसे देवता भी बहुत काल की सेवा वा अपमान से प्रसन्न वा अप्रसन्न होते हैं ॥

(प्रश्न ८) मूर्ति के सामने जो आप स्तुति करते हैं क्या वह सुनती है? भोग लगाते हो क्या वह खाती है यदि नहीं तो क्या लाभ है ? ॥

(उत्तर ८)—हम पहिले तुम्हीं से पूछते हैं कि तुम कहीं बैठ कर यदि निराकार ईश्वर की स्तुति करते हो तब क्या वह सुनता है । यदि सुनता है तो कहो प्रमाण (सुबूत) ही क्या है ? । यदि कहो कि (शृणोत्यकर्णः) वह विना ही कान सुनता है । तो यही प्रमाण हमारे लिये भी हो जायगा । क्यों कि मूर्त्ति हमारे स्तोत्र को सुनती है इस उद्देश से हम भी स्तुति नहीं करते किन्तु जिस की यह मूर्त्ति है वह मूर्त्ति के भी बाहर भीतर विद्यमान रहता हुआ सब सुन रहा है । शरीरों में भी तो जीवात्मा ही सुनता मानने पड़ेगा किन्तु शरीर सुनता है यह नहीं बन सकता तब मूर्त्ति कैसे सुन लेगी । वह तो शरीर के तुल्य अधिष्ठान मात्र है । और हम मूर्त्ति

की स्तुति भी नहीं करते किन्तु मूर्त्ति वाले की स्तुति करते हैं। क्या यह नियम है कि मूर्त्ति सुने तभी उस के सामने स्तुति करनी चाहिये यदि ऐसा है तो तुम पहिले यह सिद्ध करलो कि शरीर सुनता है तब किसी गुरु महात्मादि की स्तुति उसके शरीर के सामने कर सकोगे। अब रहा भोग लगाने का विचार सो इस पर हम पूछते हैं कि यदि तुम किसी राजा रईस के वा बड़े महात्मा के पास खाने के फलादि पदार्थ लेजाओ और आगे धरो भेंट करो तो क्या वह उन को खाही ले तभी मानोगे। यदि वह उन तुम्हारे फलादि से भी उत्तमोत्तम पदार्थों द्वारा पहिले से ही तृप्त है तो तुम्हारे सामने क्या किन्तु पीछे भी नहीं खायगा। यह बात तुम स्वयं भी जानते होकि किसी बड़े हाकिम के पास जो बड़े २ रईस डाली लेकर जाते हैं भेंट करतेहैंतो वह हाकिम उन डाली के पदार्थों को स्वयं नहीं खालेता परन्तु वहां तुम यह दलील नहीं उठाते। यदि तुम अभी कुछ खाने का पदार्थ राजादि के पास भेंट करने को ले जाओ और वह उन फलादि को हाथ में लेते ही झट खाने लगे तो तुम उस को तुच्छ भुक्खड़ समझो वा कहोगे। भोग आदि भेंट करने का यह अभिप्राय ही अब नहीं कि वह तत्काल वा आगे पीछे उसे खाले तभी भेंट किया जाय किन्तु उस का अभिप्राय यह है कि हम भोग समर्पणादि द्वारा उस की भक्ति करें उस को ज्ञात हो कि यह मेरा भक्त है मुझे मानता है भोजनादि के समय भी मुझे भूलता नहीं है इस प्रकार की भक्ति से राजा वा ईश्वर उस पर प्रसन्न होता है इस से उस का इष्ट सिद्ध हो जाता है। मूर्त्ति खायेगी वा खाती है इस अभिप्राय से कहीं कभी कोई भोग लगाता ही नहीं किन्तु मूर्त्तिमान् को प्रसन्न करने के लिये लगाता है तब तुम्हारे तर्क को अवकाश ही कहां है ?। और आर्याभिविनय पुस्तक में स्वा० दयानन्द ने भी सोमरस का भोग लगाना लिखा है कि "हे ईश्वर हम ने आप के लिये सोमलतादि का रस तयार किया है उसे तुम पिओ" सो यह बताओ कि यह सोमरसका भोग लगाना तुम मानते हो वा नहीं ?। यदि मानते हो तो क्या तुमने सोमरस ईश्वर को कभी सामने पिलाया ?। यदि नहीं मानते तो स्वा० द० का लिखना मिथ्या हुआ न ?। वास्तव में इन आ० समाजियों के प्रश्न मूर्खता से भरे युक्ति प्रमाण से विरुद्ध ही हुआ करते हैं॥ शेषआगे

दयानन्दी मत का शास्त्रविरुद्ध होना—

पाठक महाशय ! सनातनधर्मियों का ऋषि तथा आचार्यों की आज्ञानुसार विधिपूर्वक किया विवाहसंस्कार भी एक सनातनधर्म है इस विवाह संस्कार के अन्त में पारस्करगृह्य सूत्रकार लिखते हैं-

त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनौ स्यातामधः शयीयातां संवत्सरं न मिथुनमुपेयातां द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः ॥

भावार्थः— कांड १ कं० ८ में आचार्य कहते हैं कि विवाह विधि पूरा हो जाने पर कन्या वर दोनों खार और लवण छोड़ के तीन दिन का व्रत करें। तीन दिन खटिया पर न सोवें किन्तु नीचे पृथ्वी पर सोवें। और एक वर्ष तक आपस में मैथुन न करें ब्रह्मचारी रहें। तथा यदि किसी कारण ऐसा न हो सके तो बारह दिन वा छः दिन वा कम से कम तीन दिन तो अवश्यमेव ब्रह्मचारी रहें मैथुन कदापि न करें। यह तो पारस्कर गृह्यसूत्र का प्रमाण हुआ। अब आश्वलायन गृह्यसूत्र का भी प्रमाण देखिये। अ०१।कं०८सू०१०—१२।

अक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणावलंकुर्वाणावधःशायिनौ स्याताम् ॥१०॥ अतऊर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रम् ॥११॥ संवत्सरं वैकऋषिर्जायतइति ॥१२॥

भावार्थः—विवाह विधि के पूर्ण होजाने पर कन्या वर दोनों खार तथा लवण न खावें ब्रह्मचारी रहें। आभूषण धारण करें पृथिवी पर सोया करें व्रतधारी रहें अधिक न बोलनादि का नियम रक्खें ईश्वर देवतादि के आराधन में तत्पर रहें। ऐसा ब्रह्मचर्य व्रत तीन दिन वा बारह दिन तक रक्खें। किन्हीं आचार्यों का मत है कि एक वर्ष भर ब्रह्मचर्य व्रत करें तो ऋषि के तुल्य प्रतापी तेजस्वी ऋषिरूप ही सन्तान पैदा होगा ॥

आगे आपस्तम्बगृह्यसूत्र का भी प्रमाण लीजिये—

त्रिरात्रमुभयोरधःशय्या ब्रह्मचर्यं क्षारलवणवर्जनं च ॥८॥ तयोः शय्यामन्तरेण दण्डो गन्धलिप्तो वाससा सूत्रेण वा परिवीतस्तिष्ठति ॥ ९ ॥ खं० ८ ॥

भावार्थः—जिस दिन गृहप्रवेश से लेकर स्थालीपाक पर्यन्त कर्म करें उसी दिन से लेकर तीन दिन पर्यन्त दोनों स्त्री पुरुष पृथिवी पर सोवें ब्रह्मचारी

रहें खार तथा लवण न खावें हविष्यान्न भोजन करें ॥८॥ ब्रह्मचर्य कहने से मधुमांस दन्तधावन अञ्जन तैलमर्दन चन्दन वा इतर फुलेल लगाने और माला धारणादि का भी निषेध जानो। जहां दोनों पृथिवी पर सोते हों वहां दोनों के बीच में एक गूलर वृक्ष का सीधा मोटा दण्ड (जिस में चन्दनादि सुगन्ध लगाया हो तथा वस्त्र वा सूत से लपेटा हो) रक्खा जावे जो स्त्री पुरुषों की मर्यादा मेंड है कि दण्डसे दूसरी ओर दोनों ही न जाने की शपथ रात्रि के सोने में विशेष कर रक्खें। आगे मानवगृह्यसूत्र का भी प्रमाण देखिये। पुरुष १। खं० १४—

संवत्सरं ब्रह्मचर्यं चरतो द्वादशरात्रं वा ॥१४॥

इस का अर्थ भी पूर्व सूत्रकारों के समान ही है। इसी के अनुसार गोभिल शौनक बौधायन हिरण्यकेशीय शांखायन आदि गृह्यसूत्रकारों के प्रमाण आप को मिलेंगे। ये गृह्यसूत्र वेद का कल्प नामक अङ्ग हैं इन में लिखे विचार वा कामों को वेद के तुल्य ही शिरोधार्य प्रमाण हम को मानना चाहिये। पर अब इस प्रकरणमें देखना यह है कि स्वा० दयानन्द का मन्तव्य क्या है क्योंकि उन का और उनके चेलोंका दावा यह है कि हम वेदमतानुयायी हैं हम ऋषियों के प्राचीन सिद्धान्त को मानने वाले हैं। हिन्दु लोग पौराणिक आधुनिक मतावलम्बी पोप हैं। प्राचीन ऋषियों के सिद्धान्त से विवाह के अन्त में जो कुछ कर्त्तव्य है हमने ऊपर स्पष्ट दिखा दिया जिस का सारांश यह निकलता है कि किसी हालत में भी तीन दिन से कम ब्रह्मचर्य रहने का नियम किसी के मत में नहीं। कम से कम तीन दिन का ब्रह्मचर्य सभीने बतलाया है। अब स्वा० दयानन्द का मत देखो—सत्यार्थ प्र० ४ समु० पृ०९३ में

जिस दिन कन्या रजस्वला होकर जब शुद्ध हो। तब वेदी और मण्डप रचके ००० मध्य रात्रि वा दश बजे अति प्रसन्नता से सब के सामने पाणिग्रहण पूर्वक विवाह की विधि को पूरा करके एकान्त सेवन करें। पुरुष वीर्यस्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण की जो विधि है उसी के अनुसार दोनों करें। ००००० जब वीर्य गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री और पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका नेत्रके सामने नेत्र-इत्यादि। अब देखिये संस्कार विधि विवाह संस्कार—पृ० ११७। जिस दिन गर्भाधान की रात्री निश्चित की हो उस रात्री में विवाह करने के लिये प्रथम ही सब सामग्री जो-

ह रखनी चाहिये । ००० पश्चात् १ घंटे मात्र रात्रि जाने पर । इस पर नोट· यदि आधी रात्रि तक विधि पूरा न हो सके तो मध्याह्नोत्तर आरम्भ कर देवे कि जिस से मध्य रात्रि तक विवाह विधि पूरा होजावे॥

पाठकगण ! यह सत्यार्थ प्रकाश और संस्कारविधि का लेख ऐसा क्लिष्ट नहीं है जिस का अभिप्राय आप लोग न समझ गये हों । स्वा० दयानन्द जी विवाहविधि के पूरे होते ही उसी रात में तत्काल ही स्त्री पुरुषों को संयोग करने की आज्ञा देते हैं और ऊपर लिखे अनुसार सब ऋषियों का प्राचीन मत है कि कम से कम तीन दिनतक विवाह होने पश्चात् दोनों ब्रह्मचारी रहें व्रत करें । यह भी ध्यान रहे कि विवाह विधि प्राचीन काल से ही कन्या के पिता के घर में होती है । तब वहीं स्त्री पुरुष दोनों संयोग करें यह अभिप्राय है क्या इस आज्ञा को समाजी लोग मानते हैं कि विवाह विधि पूरा होते ही थोड़ी ही देर भी शान्ति न करके कन्या का हाथ पकड़ के एकान्त में लेजावे । स्वा० द० जी बुद्धिमान् थे उन्हों ने सोचा होगा कि विवाह हो जाने पर कन्या अपनी मातादि स्त्रियों में चली जाया करती हैं फिर कदाचित् वहां से शीघ्र न लौट सके तो मौकाही न मिलेगा । स्वा० द० को स्त्री पुरुषों का संग करा ने की बड़ी जल्दी मन में घुसी हुई थी । ऐसा विचार स्वा० द० का क्यों था यह बुद्धिमान् लोग स्वयं सोचें । और अर्थापत्ति से आने वाली यह बात स्वा० द० के मन में रह गयी लिख नहीं पायी कि कन्या को और उस के भाई पितादि को समाजी लोग पहिले से बन्द चिट्ठी में लिख भेजा करें कि उसी रात में विवाह के बाद एकान्त सेवन के लिये कोई जगह तुम लोग नियत कर रखना । आज कल कोई समाजी ऐसे हैं जो शास्त्र विरुद्ध घृणित और लज्जा आने वाले कामों को निर्लज्ज हो के स्वा०द० के लेखानुसार करनेको तत्पर होने में अपने को इबल आर्य समझते हैं ॥

तदनुसार एक समाजी का अन्य समाजी की लड़की से विवाह ठहरा । दोनों को ही यह शंका नहीं थी कि हम दोनों में किसी प्रकार का विरोध हो सकता है । दोनों ही जानते मानते थे कि जैसा कुछ विचार संस्कार विधि में लिखा है वैसा किया जायगा । तदनुसार वर पक्ष के लोग कन्या के घर गये और संस्कार विधि में लिखे अनुसार विवाह विधि पूरा होतेहीकन्या वर दोनों के पिता कन्या के भाई पुरोहित तथा अन्य अनेक मनुष्य दोनों पक्ष के बैठे हुये थे उन सब के सामने ही वर ने कन्या का हाथ पकड़ के खेंचा ।

अन्य लोग चाहते वा समझते थे कि विवाह विधि पूरा हो गया अब कन्या को भीतर घर में नायिन ले जावेगी। क्योंकि ऐसी ही चाल सनातन से सब के यहां चली आती थी यही सब ने सुना जाना था। संस्कार विधि में लिखे अनुसार सब काम होगा। इस का यह अभिप्राय कोई भी नहीं समझा हुआ था कि विवाह विधि पूरा होते ही वर कन्या को कहीं एकान्त में खेंचले जावे और उसी समय दोनों का गट्ट पट्ट होने लगेगा! वर को कन्या का हाथ पकड़ के खेंचते देख कर सब लोग चकित हुए। तब कन्या का भाई बोला—

कन्या भ्राता—अजी! तुम इस लड़की को किधर खेंचे लिये जाते हो क्या खप्त हो गया घर में भीतर जानेदो—

वर—क्या तुम लोग सब के सब अज्ञानी ही हो ऐसा मालम होता है। इसी से उलटा मुझे दोषी कहते हो।

क० भ्रा०—अजी! महाराज हम नही जानते तो कृपा कर बतलादीजिये हम भी जान लें क्या बात है?।

वर—क्या तुम ने सत्यार्थ प्रकाश संस्कारविधि नही देखे वहां क्या लिखा है। जब वहां साफ २ लिखा है कि विवाह विधि पूरा होने पर उसी रात में एकान्त सेवन करना चाहिये तब तुम लोग क्यों घबड़ाते हो।

क० भ्रा०—मालूम होता है तुम बेशर्म निर्लज्ज मनुष्य हो। देखो हमारे तुम्हारे पिता पुरोहित जी आदि बुजुर्ग लोग बैठे हैं जिन सब के सामने ऐसी बात कहते तुम को जरा भी लज्जा न आई। चलो लड़की का हाथ छोड़दो भीतर घर में ले जाने दो।

वर—देखो मुझे ही तुम फिर भी दोष देते हो लाओ सत्यार्थ प्रकाश निकालो। सत्यार्थ प्रकाश खोला गया वहां लिखा है (सब के सामने पाणिग्रहण पूर्वक विवाह करके एकान्त सेवन करें) जब कि सब के सामने लिखा है तो भी मैंने इतना किया कि अलग ले जाता हूं।

क० भ्रा०—हम इस लेख को नहीं मानते तुम लड़की का हाथ छोड़ दो नहीं तुम्हारे लिये अच्छा न होगा॥

वर—तुम लोग आर्य नहीं हो पोप जान पड़ते हो। हम तो पक्के आर्य हैं सत्यार्थ प्रकाश तथा संस्कार विधि में जैसा कुछ लिखा है वैसा ही ठीक २ माने और करेंगे। यदि वैसा न करें तब कोई भी न करेगा तो स्वामी जी का लिखना मिथ्या वा व्यर्थ ही ठहरा न?। शेष आगे